॥ श्रीः ॥

तर्कसंग्रहः ।

महोपाध्यायान्नम्भट्टविरचितः



कूर्माचलीयपण्डितहरिदत्तशर्मनिर्मित-

भाषाटीकासहितः ।



स एव

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

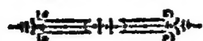
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।



संवत् १९६६, शके १८३१.

भूमिका।



व्यभिचारशङ्काको निवृत्त करनेवाला तर्क कहाता है, "आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥" इस स्मृतिमें महर्षि मनुजीने धर्मशास्त्रके अनुकूल तर्कको धर्मका अङ्ग माना है। महाभारतमें- "तं वैफलार्थिनं मन्ये भ्रातरं तर्कचक्षुषा" इसश्लोकमें तर्कको ज्ञान माना है। भरतमुनि तर्कशास्त्रको आन्वीक्षिकी कहते हैं। अमरसिंहने अमरकोषमें इसको तर्कविद्या कहाहै। न्यायदर्शनमें तर्क (न्याय) शास्त्रका फल मोक्ष लिखा है उसका सारांश यह है कि-परमात्मा और जीवात्मा दोनों ही नित्य हैं, परमात्मा ईश्वर है, वह जीवात्मासे भिन्न ब्रह्मपदका अर्थ है। इस शास्त्रका प्रयोजन यह है कि, जब चार्वाक आदि नास्तिकोंने वेदादि धर्मशास्त्रों पर अविश्वास फैला दिया था, युक्तिको छोड दूसरे प्रमाणोंको नास्तिक नहीं मानतेथ, परलोकके ऊपर विश्वास उड़गया था। तब धर्मके रक्षक ईश्वरने ही गोतमादि मुनियोंमें अपनी कलाका प्रवेश

कर समयानुकूल नास्तिकोंके मतको निर्मूल करनेकेलिये न्यायशास्त्र बनाया उसमें बड़ी प्रबल युक्तियोंद्वारा ईश्वरको जगत्का बनानेवाला सिद्ध करना, संशयोंको दूर करके वेदपदार्थका निर्णय करना, इत्यादि बातें कही हैं यह गोतम प्रमाण, प्रमेय इत्यादि १६ पदार्थोंको मानतेहैं- उनके मनन करनेसे तत्त्वज्ञान और उससे जीवका मोक्ष होना यह इस शास्त्रका सिद्धान्त है । कणाद मुनिका बनाया हुआ वैशेषिक शास्त्र है, इन दोनों शास्त्रोंका परस्परमें बहुत कम भेद है । इसीसे कहा है कि—"न्यायवैशेपिकादिः स्यात्तर्कविद्या प्रतिष्ठिता । तस्यामान्वीक्षिकी ज्ञेया तत्रात्मज्ञानमुन्नयेत॥" अर्थात् न्याय, वैशेपिक इत्यादिक प्रसिद्ध तर्कविद्या कहातीहै उसीमें जो आन्वीक्षिकी विद्या है उसमें आत्मज्ञान है जिसके विचारसे मनुष्य जन्म मरणरूप संसारचक्रसे छूटकर नित्यसुखका अनुभव करता है। यद्यपि आजकल अन्यद्वीपनिवासियोंने कलाकौशलमें खूब उन्नति कर रक्खी है और प्रतिदिन करते जाते हैं,

पर दर्शन विषयमें जो उन्नति इस भारतने किसी समयमें की थी उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे पूर्वज मुनियोंके यही दर्शन शास्त्र हैं, उनमें भी न्यायदर्शनका सूक्ष्म विचार समझना बडाही कठिन है, यह विचारकर पण्डित शिरोमणि श्रीअन्नम्भट्टने न्याय और वैशेषिक शास्त्र के गूढ विषयोंके समझनेकी योग्यता बुद्धिको प्राप्त होनेके लिये यह छोटा और सारज्ञानसे भरा हुआ तर्कसंग्रह बनाया है। इसमें द्रव्य गुण आदि ७ पदार्थोंका वर्णन है। इन्हीं पदार्थोंमें संसारका सब प्रपञ्च कह दिया है जिसको भलीभाँति समझलेनेसे मुक्तावली आदि न्यायके बडे ग्रन्थोंके विषय विना परिश्रम समझे जा सकतेहैं। और उनके विषयोंका विचार करनेसे बुद्धि परिपक्व होकर इस शास्त्रकी उपयोगिताको स्वयं समझने लगतीहै। वेद तथा शास्त्रोंका यही रहस्य है कि, 'श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः' अर्थात् वेदके वाक्योंद्वारा आत्माका स्वरूप सुनना और

युक्तियोंसे मनन करना चाहिये । मनन करना अनुमानसे होताहै । अनुमान व्याप्तिज्ञानके अधीन है । व्याप्तिज्ञान पदार्थोंके विचार करनेसे होताहै । इसी कारणसे कणाद-मुनिनें "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" इत्यादि दश लक्ष-णोंमे छः पदार्थोंका निश्चय कियाहै । फिर संसारके पदार्थ, उनका सम्बन्ध, पृथिवीआदि पञ्चभूत, दिशा, काल, आत्मा, मन, शरीर, कर्म, वैदिक यज्ञादि कर्म, दान प्रतिग्रह कर्म, वर्णाश्रम धर्म, बुद्धि—तत्सापेक्ष निरपेक्ष कर्म, निर्विकल्प तथा सविकल्प प्रत्यक्ष प्रमाण इत्यादिका विचार कियाहै । जब मनुष्य विचार करते करते यह जानलेताहै कि आत्मा नित्य है, अन्य पदार्थोंसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है, शरीर, मन, बुद्धि इत्यादिकोंसे उसका अनित्य सम्बन्ध है । बुद्धिकी अज्ञानता आदि सम्बन्धोंको छोड़ देनेसे उसका संसार छूट जाताहै, तब "न तत्र दुःखं न सुखं न किञ्चन्न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा" इत्यादि अवस्था उसकी होजाती है ।

आत्मा केवल मनसे मालूम पडता है। यद्यपि नैयायिक लोग अनुमानसे आत्माकी सिद्धि करचुके और आत्माके जान लेनेसे दुःखमय संसारका नाश भी सिद्ध होगया पर उनकी सम्मतमुक्तिमें बहुतसे विद्वान् उतना महत्त्व नहीं मानते जितना वेदान्तके मतका।यहां इतनाही कहना उचित जान पडता है कि अपनी अपनी बुद्धिके द्वारा जिन जिन आचार्योंने मोक्षका विधान किया है उस फलमें कुछ भेद नहीं केवल प्रक्रियामात्र भिन्न हैं, जैसे सभी नदियां समुद्रमें जातीहैं और अलग अलग मार्गोंसे जातीहैं इससे समुद्रप्राप्तिमें कुछ भी फर्क नहीं होता इससे यह सिद्ध हुआ कि न्यायशास्त्र वेदादि शास्त्रोंकी रक्षा करने वाला और आत्ममनन करनेसे मोक्षको देनेवाला है, उसी शास्त्रसागरमें प्रवेश कराने वाला यह तर्कसंग्रह नौकास्वरूप है, केवल हिन्दी जाननेवाले भी न्यायशास्त्रमें प्रवेश करसकें इस अभिप्रायसे इसकी भाषाटीका अन्नम्भट्टकृत दीपिकाके

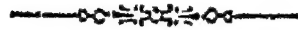
आशयसे की गयी है, क्योंकि अपने बनाये तर्कसंग्रहकी टीका जब उक्त अन्नम्भट्टने स्वयं की है तो उसका यथार्थ आशय इसमें आया हो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, इसके अतिरिक्त कहीं कहीं मुक्तावलीके अनुसार भी लिखा गया है, पहिले यह विचार था कि यथाशक्ति सरल हिन्दीभाषामें यह टीका की जाय परन्तु बहुतसे ऐसे शब्द आये हैं कि जिनको थोडे शब्दोंसे कह नहीं सकते, कदाचित् शब्दगारवका ध्यान न करके कहें भी पर मुक्तावली आदि पढनेमें उन्हीं शब्दोंसे व्यवहार करना पडेगा इससे वह शब्द लिखकर हिन्दीमें समझाये गये हैं। यदि हिन्दी जाननेवाले इससे कुछ लाभ उठा सकें तो बडे आनन्दकी बात हो । भ्रान्ति होना पुरुषका धर्म है इससे हिन्दी व्याख्यामें कहीं भ्रान्ति होगयी हो तो उदार पाठक क्षमा करेंगे ।

कृपाभिलाषी-हरिदत्तशर्म्मा.

॥ श्रीः

अथ तर्कसंग्रहे

भाषाटीकासहित।



निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम्।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

याविर्बभूव रुचिरा सुकृतस्य पार्श्वा-
ज्ज्ञानं प्रसारयितुमिष्टतमं धरण्याम्।
वीणाक्षमाल्यवरपुस्तकधारिणीयं
दोर्भिश्चतुर्भिरवताद्भवतः प्रसूर्गीः ॥ १ ॥

ध्यातैव या निखिलविघ्नचयं निहत्य
स्फूर्तिं ददाति हृदयं सदयं प्रविश्य।
ध्यातुर्मुहुर्विविधसुन्दरशब्दजाले
वाग्देवताचरणपङ्कजमाश्रयामि ॥ २ ॥

श्रीकूर्मभूधरनिवासिमनीषिवर्य-
श्रीकृष्णशर्मतनुजो हरिदत्तशर्मा ।
तत्तर्कसंग्रहमुदारवचःप्रबन्धं
हिन्दीगिरार्भकहितं विवृणोमि धीराः ॥ ३ ॥

तर्कशास्त्रमतिदुर्ग्रहमेतद्बालकाः ससुखमत्र लभेरन् ।
सुप्रवेशमिति चेतसि कृत्वा भाषयाविवरणे मम यत्नः ॥ ४ ॥

वाचः काणभुजीश्च गौतमगवीरालोड्य सम्यक्तयो-
र्व्युत्पत्तिः ससुखं भवेदिति धिया-संक्षेपतः सारवत् ।
अन्नम्भट्टकृती जगाद निखिलं तद्बालबोधाय हि
प्रव्यक्तं फलमस्य सार्वजनिकं हिन्दीगिरा जायताम्॥ ५॥

बनानेकी इच्छा किये हुए ग्रन्थकी बिना किसी प्रकारके विघ्न हुए समाप्ति होजानेके लिये सज्जनोंके अनुमान किये हुए वेदकी आज्ञास्वरूप इष्टदेवताके नमस्कारात्मक मङ्गलाचरणको करतेहैं 'निधाय०- इस श्लोकसे । यहां इस बातका विचार उपस्थित होताहै

कि, ग्रन्थकी समाप्ति मङ्गलाचरणसे होसकतीहै या ग्रन्थ-कर्ताकी विद्या बुद्धि इत्यादि प्रधान कारणोसे । पहिले दृष्टवादियोंकी ओरसे उत्तर होसकताहै कि, ग्रन्थसमाप्तिके लिये मङ्गलाचरण कारण नहीं है, क्योंकि किरणावली इत्यादि न्यायके बडे बडे ग्रंथोंमें मङ्गलाचरण नहीं किया गया और ग्रन्थ समाप्त होगये और कादम्बरी इत्यादि ग्रन्थोंमें मङ्गलाचरण करने पर भी ग्रन्थ पूर्ण नहीं हुए इससे मङ्गलाचरणँ करना ग्रन्थकी समाप्तिका करण मानना भ्रममात्र है । अदृष्टवादियोंका मत है कि, वादि-योंका यह कहना ठीक नहीं है । सज्जनोंकी रीति देखी जाती है कि, प्रायः बड़े बड़े ग्रन्थोंमें मङ्गलाचरण कियाहुआ रहताहै वह इस बातको सिद्ध करताहै कि, अवश्य मङ्गलाचरणसे ग्रन्थ पूर्ण होसकता है । क्योंकि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' कल्याणके कार्योंमें विघ्न हुआ ही करतेहैं उनके दूर करनेको मङ्गलाचरण

अवश्य करना चाहिये। यद्यपि ग्रन्थकर्ताकी विद्या और बुद्धि आदि ग्रन्थ समाप्तिके प्रधान कारण हैं पर बीचमें विघ्न आपडें तो उन्हें कौन रोक सकताहै, और परम आस्तिक बाणभट्ट आदियोंके ग्रन्थ कादम्बरी आदिमें मङ्गलाचरण किये जाने पर भी विघ्न पड़गया और समाप्ति न होसकी वहां अत्यन्त विघ्न समझना चाहिये और किरणावली आदिमें मङ्गल नहोनेपर भी पूर्णता होगई उसमें यह समझना चाहिये कि, मङ्गल अवश्य किया गया होगा पर लिखा नहीं गया है। हां नास्तिकोंके ग्रन्थोंमें कभी मङ्गलाचरण नहीं होते उनके ग्रन्थोंकी समाप्ति उनके पूर्वजन्मोंके मङ्गलोंसे माननी चाहिये। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि देवताओंके नाममें शक्ति स्वतःसिद्ध है जैसे अग्निमें तेज (जलाना) उनके स्मरणसे ग्रन्थकी समाप्ति और सदा लोकमें प्रचार तथा प्रसिद्धि होतीहै इसमें कुछ भी सन्दहे नहीं है।

निधाय०—मनमें विश्वनाथको रख और श्रीगुरुजीको प्रणाम करके न्यायशास्त्रको जाननेवाले लोगोंके लिये मुझसे तर्कसंग्रह बनाया जाताहै ॥ प्रायः शास्त्रोंमें अनुबन्धचतुष्टय रहता है इससे इस ग्रन्थके कर्ता श्रीअन्नम्भट्ट भी इस मङ्गलाचरणमें चार अनुबन्ध रखतेहैं वह इस प्रकार हैं कि—१ अधिकारी, २ विषय, ३ सम्बन्ध और ४ प्रयोजन । न्यायशास्त्रको नहीं जाननेवाले बालक इसके अधिकारी हैं । न्यायशास्त्र विषय है । न्यायशास्त्रका अन्नम्भट्टसे कहा-जाना प्रतिपाद्य—प्रतिपादकभाव सम्बन्ध,तथा बालकोंको विना परिश्रम न्यायशास्त्रका ज्ञान होना प्रयोजन है॥ १॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः ।

द्रव्य१ , गुण२ , कर्म ३, सामान्य४ , विशेष५ , समवाय६ और अभाव ७ ये सात पदार्थ हैं । मूलमें द्रव्य

गुण इत्यादि सात पदार्थ- नाम लेकर कहे ही हैं फिर 'सप्त' इस पदके कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि, सात ही पदार्थ होतेहैं अधिक नहीं ।

तत्र द्रव्याणि-पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ।

द्रव्य-पृथ्वी १, अप् २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६ , दिशा ७, आत्मा ८, और मन ९ इन भेदोंसे नव(९) हैं । यहां अन्धकार भी दशवां पदार्थ मानना चाहिये क्योंकि काला अन्धकार फैलताहै ऐसी प्रतीति रात्रिमें होतीहै । काला रूप विना किसी आधारके रह नहीं सकता, फैलना- क्रिया है, गुण और क्रियावाला द्रव्य होताहै इससे अन्धकारका दशवां द्रव्य होना सिद्ध हुआ । आकाश इत्यादि पांच पदार्थोंमें अन्धकारका अन्तर्भाव भी नहीं होसकता क्योंकि काला रूप उसमें है। स्पर्श न होनेसे और सदा इधर उधर न चलनेसे वायुमें

अन्तर्भाव नहीं। ठंडा स्पर्श और कालेरूपके आधार होनेसे जलमें भी अन्तर्भाव नहीं होसकता। गन्ध और स्पर्श न होनेसे पृथिवीमें भी अन्तर्भाव नहीं होसकता। यह उक्ति ठीक नहीं। अन्धकार तेजका अभावमात्र है। अन्धकार रूपवाला द्रव्य नहीं, प्रकाश-रहित आँखसे दिखाई पड़ताहै, प्रकाशमें तो नहीं दिखाई पड़ता। जिन द्रव्योंका रूप हो उनको देखनेमें प्रकाशकी आवश्यकता है। इससे सिद्ध हुआ कि बडे प्रकाशका अभाव ही अन्धकार है, काला काला अन्धकार चलताहै यह प्रतीति भी भ्रान्ति ही है। इससे सिद्ध हुआ कि ९ ही द्रव्य हैं।

द्रव्यत्व जातिवाला और गुणवाला द्रव्य होताहै यह द्रव्यका साधारण लक्षण है। उदाहरणके किसी अंशमें लक्षणका न घटना अव्याप्ति कही जातीहै जैसा—गायका दो तीन रंगवाली होना। उदाहरणसे बाहर भी लक्षणका

चलाजाना अतिव्याप्ति होतीहै जैसा–गायका सींग-वाली होना। उदाहरणमें लक्षणका कुछ भी न घटना असम्भव कहलाताहै जैसा–गायके एक खुर होताहै ऐसा कहना। इन तीनों दोषोंसे रहित धर्म लक्षण कहा-जाता है। इसीका नाम असाधारण धर्म है।

॥ इति द्रव्यविभाग ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयो-गविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबु-द्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारा-श्चतुर्विंशतिर्गुणाः।

रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४, संख्या५, पारि-माण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग९, परत्व १०, [illegible] ११, गुरुत्व १२, द्रव्यत्व १३, स्नेह १४, शब्द १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३, संस्कार २४, यह

चौबीस गुण हैं । यद्यपि इन चौबीसोंसे अधिक–हलका, चिकना, कठोर इत्यादि गुणभी हैं परन्तु हलका,गुरुत्वका अभाव है, चिकना और कठोरका देहके विशेष संयोगरूप होनेसे चौबीसोंमें अन्तर्भाव होसकताहै इससे २४ गुण कहना ठीक है ।

॥ इति गुणविभाग ॥

उत्क्षेपणाऽपक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानिपञ्च कर्माणि ।

उत्क्षेपणा १, अपपेक्षणा २, आकुञ्चन ३,प्रसारण ४, और गमन ५ ये पांच कर्म हैं, संयोगसे अलग हो और संयोगका असमवायिकारण हो वह कर्म कहाताहै अथवा कर्मत्वजातिवाला कर्म कहा जाता है ।

यद्यपि घूमना, अलग होना, चूना. ऊपरको- जलना, तिरछा जाना ये पांच कर्म अधिक प्रतीत होतेहैं पर इन सबको गमनमें अन्तर्भाव होनेसे पांच ही

कर्म माने गये हैं। यहां उत्क्षेपण–ऊपरको उठाना, अपक्षेपण-नीचे फेंकना, आकुञ्चन-समेटना, प्रसारण-फैलाना यह चार कर्म भी गमनमें अन्तर्भूत होसकते हैं इनको अलग कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि एक गमनहीसे सब सिद्ध होताहै परन्तु महात्मा मुनि इनको मानते हैं उनकी मानरक्षाके लिये सभीको वैसा ही मानना चाहिये।

॥ इति कर्मविभाग ॥

परमपरञ्चेति द्विविधं सामान्यम् ।

अधिक स्थानमें रहनेवाला पर और कम स्थानमें रहनेवाला अपर सामान्य कहा जाता है।

सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव इन चारोंमें जाति नहीं रहती। सामान्य भावको कहतेहैं। द्रव्यके ऊपर द्रव्यत्व जो रहताहै वही सामान्य है। द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों पर रहनेवाली सत्ता पर कही

जातीहै क्योंकि वह द्रव्यसे अतिरिक्त गुण कर्मोंमें भी रहतीहै ।

॥ इति सामान्यविभाग ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ।

पृथिवी, जल, तेज, वायु इनके परमाणु आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नित्य द्रव्य कहे जातेहैं, इनमें रहनेवाले विशेष अनेक हैं ।

समवायस्त्वेक एव ।

समवाय एक ही है, उसके भेद नहीं होते ।

हां, समवाय एक है तो वायुमें स्पर्श समवायसम्बन्धसे रहताहै उसके रूपवाला होनेकी प्रतीति क्यों नहीं होती, यद्यपि रूप वायुमें नहीं है परन्तु पृथिवीमें तो है, पृथिवी और वायुके समवायमें कोई भेद नहीं हुआ तो अब वायुको रूपवान्होनेकी प्रतीतिमें कौन बाधक रहा । ठीक है, वायु यक्ष नहीं होसकता । क्योंकि रूपमें

समवाय सम्बन्धके रहनेपर भी वायुमें रूपके न होनेसे प्रत्यक्ष होनेकी योग्यता नहीं है।

॥ इति समवाय ॥

अभावश्चतुर्विधः—प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यंताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ।

अभाव चार प्रकारकाहै-प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ अत्यन्ताभाव ३ अन्योन्याभाव ४ इनके लक्षण और विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थकी समाप्ति में देखना चाहिये।

तत्र गन्धवती पृथिवी।सा द्विविधा नित्याऽनित्या च।नित्या परमाणुरूपा।अनित्या कार्यरूपा।

जिसमें गन्धका नित्य योग हो वह पृथिवी कही जाती है। कहीं पर दो तीन प[दा]र्थोंके संयोगसे एक विचित्र गन्ध उत्पन्न होजाताहै, कहीं सुगन्ध और दुर्गन्धके मेलसे ठीक ठीक ज्ञान किसी गन्धका नहीं होसकता वहां केवल किसी भी गन्ध हो तो उसीसे लक्षण कर-

लेना चाहिये अर्थात् गन्धमात्र होनेसे वह पृथिवी कही जायगी। कहीं पर गन्ध रहनेपर भी मालूम नहीं पड़ता जैसा पत्थर इत्यादि, वहां छिपाहुआ गन्ध जानना चाहिये क्योंकि उसी पदार्थके भस्म करनेसे उसमें गन्ध मालूम पडताहै. कभी कभी जलमें भी गन्ध प्रतीत होताहै जैसे गुलाबजल, केवडेका जल अथवा नये मिट्टीके घडेका पानी, पर इनमें स्वतः गन्ध नहीं है किन्तु पृथिवीके संयोगहीसे गन्ध रहताहै इससे सिद्ध हुआ कि पृथिवीहीका गुण गन्ध है दूसरेका नहीं।

पुनस्त्रिविधा–शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमस्मदादीनाम्। इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति। विषयो मृत्पाषाणादिः।

पृथिवीका दूसरे प्रकारसे भेद कहतेहैं–वह पृथिवी फिर तीन प्रकारकी है-शरीर,इन्द्रिय और विषयके भेदसे। कर्मोंके भोग करनेका स्थान शरीर है, सुख अथवा

दुःखका मालूम पडना भोग है। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जिस शरीरसे आत्माका संयोग हो उसमें सुख अथवा दुःखका अनुभव करनेवाले आत्माका स्थान ही शरीर कहा जाताहै। शब्दसे भिन्न प्रकट विशेष गुणों—(रूप, रस, गन्ध,स्पर्श, स्नेह, स्वाभाविक पतलापन,धर्म, अधर्म, भावना) के आधार न होने पर ज्ञानके कारण मनके संयोगके आश्रय इन्द्रिय होतेहैं। उक्त शरीर और इन्द्रियोंसे भिन्न विषयकहा जाताहै। इसप्रकार गन्धवाला शरीर पृथिवी सम्बन्धी शरीरहै, गन्धवाला इन्द्रिय पृथिवीसम्बन्धी इन्द्रिय है गन्धयुक्त विषय पृथिवीका विषय है ऐसे लक्षण जानलेने चाहिये। हम लोगोंके तथा, पशु, पक्षी आदि सब जीवोंके शरीर पार्थिव शरीर कहे जातेहैं। गन्धको ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय नाक है,उसके भी अग्र भागमें गन्ध ग्रहण करनेकी शक्ति है सब जगह नहीं।मिट्टी पत्थर इत्यादि पृथिवीका विषयहै

॥ इति पृथिवीनिरूपण ॥

शीतस्पर्शवत्य आपः। ताश्च द्विविधाः-नित्या अनित्याश्च। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः। पुनस्त्रिविधाः—शरीरेन्द्रियविषय-भेदात् शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः।

जो छूनेसे ठंढा मालूम हो वह जल कहाताहै। वह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप नित्य है, कार्यरूप अनित्य है। तालाव, नदी, समुद्र इत्यादि जलाशयोंके जल कार्यरूप हैं। फिर जल—शरीर, इन्द्रिय और विषयभेदसे तीन प्रकारके हैं। जलका शरीर वरुणलोकमें है। रसको जाननेवाली रसना जलकी इन्द्रिय है सो जीभके अगले भागमें रहतीहै। नदी, तालाव, समुद्र इत्यादि जलका विषय है।

॥ इति जलनिरूपण ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः। तद्विविधम्—नित्यमनित्यञ्च। नित्यं परमाणुरूपम्। अनित्यं कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधम्—शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति। विषयश्चतुर्विधः—भौमदिव्योदर्याकरजभेदात्। भौमं वह्न्यादिकम्। अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि। भुक्तस्य परिणामहेतुरुदर्यम्। आकरजं सुवर्णादि।

गर्म स्पर्शवाला तेज कहा जाताहै। वह नित्य और अनित्य इन भेदोंसे दो प्रकारका है। परमाणुरूप नित्य और कार्यरूप अनित्य है। फिर तीन प्रकारका है—शरीर, इन्द्रिय और विषय इन भेदोंसे। तेजका शरीर सूर्यलोकमें है। शुक्ल, नील आदि रूपको ग्रहण करनेवाली आँख इन्द्रिय है, आँखमें भी काली पुतलीके आगेका भाग। विषय चार प्रकारका है—भौम (पृथ्वी-

सम्बन्धी) दिव्य (आकाशसे सम्बन्ध रखनेवाला) उदर्य (उदरसम्बन्धी) और आकरज (खानि सम्बन्धी) भेदसे। भौम अग्नि आदिहै। पानीसे प्रकट होनेवाला तेज दिव्य बिजली आदि है। खाये हुए भोजनको पचानेवाला तेज उदर्य पेटमें रहताहै। खानियोंसे उत्पन्न होनेवाला तेज आकरज सुवर्णादि धातु है। 'सुवर्ण तेज नहीं बल्कि पार्थिव द्रव्यहै, पीलेरंगका और भारी होनेसे वह तेजमें नहीं गिना जा सकता, जैसे हलदी, इस अनुमानसे सुवर्णको पार्थिव पदार्थ ही मानना चाहिये' ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये,क्योंकि खूब अग्निके संयोगसे घी इत्यादिमें पतलेपनका नाश होजाताहै और पानीमें रखनेसे नहीं होता, कोई खास विरुद्ध कारणके विना पृथवीके पतलेपनका नाश और अग्निका संयोग इनका कार्यकारणभाव निश्चित है, परन्तु सुवर्णमें चाहे जितना अग्निका संयोग किया जाय पर उसका पतलापन

कभी नष्ट नहीं होता, इससे वह पृथवी नहीं होसकता। इस कारण पीले द्रव्य और पतले एक प्रकारके द्रव्यकी सिद्धि हुई, परन्तु पतलापन सुवर्णमें अग्निके संयोगसे होता है इससे जलमें उसका अन्तर्भाव नहीं होसकता क्योंकि जलमें पतलापन स्वाभाविक है। रूपवाला होनेसे वायु आदि अरूपिपदार्थोंमें भी अन्तर्भाव नहीं होसकता, इससे सुवर्णका तैजस पदार्थ होना सिद्ध हुआ॥ पृथिवीके रूप और स्पर्शोंसे तेजःसम्बन्धी गर्म स्पर्श और चमकदार रूपोंके नष्ट होजानेसे उनका प्रत्यक्ष नहीं होता, इससे सुवर्ण तैजस पदार्थ सिद्ध हुआ इसका अनुमान यों सिद्ध—कियागया है

'सुवर्णम्, अपार्थिवम् असति प्रतिबन्धके अत्यन्तानलसंयोगे सति अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवम्, यथा पृथिवी॥'

अर्थात्-सुवर्ण पृथ्वी सम्बन्धी द्रव्य नहीं है कोई बाधक

न होनेपर खूब अग्निसंयोग होनेपर भी नाश न होने-वाले पतलेपनके आधार होनेसे, जो ऐसा नहीं, वह ऐसा नहीं, जैसे पृथिवी।

॥ इति तेजोनिरूपण ॥

रूपरहितस्पर्शवान् वायुः। स द्विविधः-नित्योऽनित्यश्च। नित्यः परमाणुरूपः। अनित्यः कार्यरूपः। पुनस्त्रिविधः शरीरेंद्रियाविषयभेदात्। शरीरं वायुलोके। इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः॥ शरीरान्तःसञ्चारी वायुः प्राणः। स चैकोऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञांलभते।

जिसका कोई रूप नहीं और स्पर्श (छूना) मालूम पड़े वह वायु है। वह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। परमाणु वायु नित्य और कार्यरूप अनित्य है। फिर तीन प्रकारका, है—शरीर, इन्द्रिय और विषय इन

भेदोंसे । शरीर वायुलोकमें है अर्थात हाथ पैर देह इत्यादि शरीरयुक्त वायु अपने लोकमें रहताहै । सारे शरीरमें चमडीके ऊपरका भाग जिससे प्रत्येक पदार्थका स्पर्श जान पडताहै वह वायुका इन्द्रिय है । वृक्षलता आदियोंके कांपनेका कारण विषय है । देहके भीतर फिरनेवाला वायु प्राण है । यद्यपि वह एक ही है पर हृदय कण्ठ आदि स्थानोंमें रहनेसे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन भेदोंसे पांच प्रकारका है । वायु स्पर्श, शब्द धारण करना और वृक्ष आदिके कांपनेसे अनुमान किया जाताहै । उसका आकार ऐसा है कि— वायुके चलनेपर जो न ठंडा न गर्म स्पर्श मालूम पडताहै वह किसीके आधारमें है क्योंकि स्पर्श गुण द्रव्यमें रहताहै, रूपके समान । इस वायुका स्थान पृथिवी नहीं होसकती, प्रत्यक्ष स्पर्शवाले पदार्थका प्रत्यक्ष रूपवाला होनेका नियम है । इसमें रूप तो नहीं देख पडता । जल- और तेज भी वायुके स्थान नहीं हो सकते क्योंकि

वायुका स्पर्श ठंढा भी नहीं और गर्म भी नहीं । आकाश, काल, दिशा और मन भी वायुके आश्रय नहीं हैं क्योंकि सभी स्थानोंमें वायुकी प्राप्ति होजावेगी । मन भी इसका आश्रय नहीं है, क्योंकि मन बहुत छोटा है उसका स्पर्श मालूम नहीं होसकता इससे सिद्ध हुआ कि जिस पदार्थका स्पर्श मालूम पडताहै वह वायु है ।

॥ इति वायुनिरूपण ॥

कार्यरूप पृथिवी, जल, तेज और वायुकी उत्पत्ति तथा नाशका क्रम इस प्रकार है। परमेश्वरकी जब यह इच्छा होतीहै कि संसार बनै तब नित्य परमाणुओंमें क्रिया उत्पन्न होतीहै उससे दो दो परमाणु आपसमें मिल जातेहैं उनसे द्व्यणुक उत्पन्न होताहै, तीन द्व्यणुकोंसे त्र्यणुक बन जाताहै । इसीप्रकार चतुरणुक इत्यादि बनकर बडी भारी पृथिवी, बडे जल, बडा तेज, बड़ा वायु उत्पन्न होजाताहै ।

इसी प्रकार जब प्रलय होने लगताहै तो क्रियासे दो परमाणुओंके विभाग होनेसे द्व्यणुकका नाश। फिर त्र्यणुक　नाश पीछे चतुरणुकका नाश। इस प्रकार पृथिवी जल इत्यादिका नाश होताहै, समवायिकारण परमाणुका नाश नहीं होता क्योंकि वह नित्य है इससे असमवायि कारणके नाश होनेसे द्व्यणुकका नाश होताहै। समवायिकारणके नाश होनेसे त्र्यणुकका नाश होताहै ऐसा न्यायशास्त्रका सम्प्रदायहै। पर नवीन नैयायिक लोग सब स्थानोंमें असमवायिकारणके नाश होनेसे द्रव्यका नाश होताहै ऐसा मानतेहैं।

परमाणु अतीन्द्रिय (जिसका प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे न होसके)हैं इसमें क्या प्रमाण है?। कहा जाता है--किसी झरोखेमें सूर्यके किरण पड़नेसे जो बहुत छोटा धूलका कण देखपडताहै उसके भी साठवें भागका जो कण है वह अपने अंगोंसहित है, बडे पदार्थका आरम्भ करनेवाला

होनेसे, वस्त्रके समान । त्र्यणुकका अवयव भी अपने अङ्गों सहित है वडे पदार्थके आरम्भकरनेवाले होनेसे, वस्त्रके समान । द्व्यणुकका अवयव परमाणु ही है । वह नित्य है, क्योंकि उसको कार्य मानो तो अनवस्था हो जायगी । तब तो सुमेरु पर्वत और सरसोंके दानोंका एक ही परिमाण होने लगेगा । हां, सृष्टि और प्रलय होताहै इसीमें क्या प्रमाण है ? । ऐसी शंकामें वेद ही प्रमाण है । उसमें कहा हुआ है ।—'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' सभी कार्यद्रव्योंका नाश खण्डप्रलय और पदार्थमात्रका नाश महाप्रलय कहा जाताहै यह न्याय शास्त्रका सिद्धान्तहै ।

शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ।

शब्द गुणवाला आकाश है वह एकहै, व्यापक और नित्य है । आकाशकी सिद्धि इस प्रकार जाननी चाहिये. शब्द–विषेश गुण है आँखसे न देखे जाने पर बाहरके इन्द्रियसे ग्रहण करनेयोग्य होनेसे,स्पर्शके समान, शब्दद्रव्य-

में समवाय सम्बन्धसे रहताहै क्योंकि वह गुण है संयोगके समान इस अनुमानसे शब्दका द्रव्यके साथ समवाय स-सम्बन्धसे रहना सिद्ध हुआ। शब्द स्पर्शवाले द्रव्योंका विशेषगुण नहीं है, अग्निसंयोगके असमावयिकारणवाले न होनेपर कारणोंके गुणोंसे प्रत्यक्ष न होनेसे, सुखके समान। शब्द—दिशा, काल और मनका गुण नहीं है, विशेष गुण होनेसे अर्थात् दिशा काल और मनका कोई विशेष गुण नहीं है। आत्माका विशेष गुण भी शब्द नहीं है क्योंकि यह बाहरके इन्द्रिय (आँख कान आदि) से ग्रहण करने योग्य है। इससे शब्द जिसमें रहताहै ऐसा नवां द्रव्य आकाश सिद्ध हुआ।

॥ इति आकाशनिरूपण ॥

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ।

भूत, वर्तमान और भविष्य व्यवहारका कारण काल

है। वह सबका आधार और सब कार्योंमें निमित्त कारण-है, एक है, व्यापक है और नित्य है।

॥ इति कालनिरूपण ॥

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्। सा चैका नित्या विभ्वी च।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इस व्यवहारका कारण दिशा है। वह एक, नित्य और व्यापक है। उदयाचल (जहां सूर्यका उदय होताहै उस) के समीपकी दिशा पूर्व है, अस्ताचल जहां अस्त हो वह पश्चिम, सुमेरु पर्वतके समीपकी दिशा उत्तर और उसके प्रतिकूल दक्षिण है। यह पूर्वादि विभाग व्यवहारके लिये किया गया है।

॥ इति दिशानिरूपण ॥

ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधः। परमात्मा जीवात्मा चेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मैक एव। जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च।

नित्यज्ञान जिसमें रहताहै वह आत्मा है।आत्मा ईश्वर एकही बातहै। शङ्का होसकतीहै कि ईश्वरके होनेमें क्या प्रमाण है ? प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं होसकता, क्योंकि प्रत्यक्ष बाह्य मानोगे या आभ्यन्तर?बाह्य तो होनहीं सकता कारण कि,ईश्वरके कोई रूप नहीं।आंखका नियम है कि;वह रूपवान् ही पदार्थको देख सकती है।आभ्यन्तर प्रमाण भी नहीं होसकता,क्योंकि विचित्र आत्मा और मनका संयोगरूप मानस प्रत्यक्ष ईश्वरमें नहीं है। अनुमान भी प्रमाण नहीं, धूमादिज्ञानरूप हेतु नहीं है। वेदादिवाक्य भी वैसे प्रमाण नहीं। इस शङ्काको दूर करनेके लिये अनुमान किया जाता है-पृथ्वी,वृक्षादिके अङ्कुर इत्यादि किसी कर्त्ता द्वारा उत्पन्न हुए हैं क्योंकि यह कार्य है जैसा घडा कुम्हारसे बनाया गया है। समवायिकारणका विषय, प्रत्यक्षज्ञान, कार्यकरनेकी इच्छा और क्रियायुक्त होना कर्त्ताका लक्षण है।बाह्य विषयसे लेकर परमाणु तक सूक्ष्म विषयोंको देखना और उनको यथार्थ रीतिसे जानना ईश्वरत्व है।

'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' जो सदा सब बातोंको जानता है ऐसा वेदवाक्य ईश्वरकी सर्वज्ञतामें प्रमाण है। सुख, दुःख, ईर्ष्या,द्वेष आदि होना जीवका लक्षण है। मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूँ,पण्डित हूँ इत्यादि सब ठिकाने में ऐसी प्रतीतिमें शरीरकी ही प्रतीति होतीहै इससे शरीर ही आत्मा है ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये क्योंकि देहस्थित हाथ या पैर इत्यादि किसी एकके नाश होजानेसे आत्माके नाश होजानेका संभव है।इन्द्रिय भी आत्मा नहीं हो सकते, जिस मैंने घड़ा देखाथा वही मैं इस समय छूरहाहूँ यह स्मरण नहीं हो सकेगा क्योंकि किसीके देखे हुएको कोई दूसरा स्मरण नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ कि देह और इन्द्रियोंसे अलग जीव सुख दुःख आदिकी विचित्रतासे प्रत्येक प्राणीके शरीरमें भिन्न है। यह परमाणु परिमाणवाला नहीं होसकता, क्योंकि नासिकामें सुगन्धितपदार्थके लगनेसे गन्धका, जिह्वामें मीठी चीजके लगनेसे रसका, रमणीय पदार्थ देखनेसे आँखका

और पुत्र, स्त्री, मित्रादिके आलिङ्गनका सुख प्रतीत नहीं होसकेगा। मध्यम परिमाण भी नहीं होसकता, क्योंकि जीवकी अनित्यता इससे होजावेगी 'यत्र मध्यमपरिमाणं तदनित्यम्' जो मध्यम परिमाणवाला है वह अनित्य है यह व्याप्ति है। इससे जीव नित्य और बड़ा है यह सिद्ध हुआ।

॥ इति आत्मनिरूपण ॥

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तम्,अणुरूपं नित्यञ्च ।

सुख, दुःख आदि जिसमें मालूम पड़े ऐसा इन्द्रिय मन है, वह प्रत्येक आत्मामें रहनेसे असंख्य, सूक्ष्म और नित्य है। स्पर्श जिसका न हो और क्रियावाला हो उसको मन कहतेहैं। मनको अणु इसलिये माना है कि, वह नित्य हो, मध्यम परिमाणवाला माननेसे उसमें अनित्यता आजातीहै।

मन आत्मा आदिके समान बडा है, स्पर्शरहित द्रव्य होनेसे ऐसा अनुमान् नहीं कर कसते क्योंकि मनके विभु होनेसे असमवायिकारण आत्मा और मनके संयोगके न होनेसे ज्ञान न होसकेगा । कदाचित यह कहा जाय कि, आत्मा और मन इन दो व्यापक पदार्थोंका संयोग होजाय, यह कह नहीं सकते। क्योंकि उनका संयोग भी नित्य होगा, तब सुषुप्ति ही न होगी । क्योंकि पुरीतती नाडीके भीतर मनके जानेसे ही निद्रा होतीहै, अब तो मनका संयोग नित्य होनेसे सब स्थानोंमें है और सर्वदा है और जब कि मनको अणु मानतेहैं तो वह मनके पुरीतती- में जानेसे सुषुप्ति होतीहै जब वहांसे निकलताहै तो सब विषयोंका ज्ञान होने लगताहै इससे मनका छोटा होना सिद्ध हुआ ।

॥ इति द्रव्यनिरूपण॥

अथ गुणनिरूपण।

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्।तच्च शुक्लनीलपीत-रक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम् । पृथिवी जलतेजोवृत्ति । तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरं शुक्लं जले । भास्वरं शुक्लं तेजसि ।

केवल आँखसे ही देखा जाय ऐसा गुण रूप है । संख्या इत्यादिमें अतिव्याप्ति न हो इसलिये आँखहीसे देखाजाय ऐसा कहा । रूपमें समवायसम्बन्धसे रूपत्वरहताहै वहां अति-व्याप्ति न होजाय इससे गुण कहा गया है फिर भी प्रभा और दीवालके संयोगमें अतिव्याप्ति न हो इससे केवल आँ-खहीसे देखाजाय ऐसा जातिवाला होना भी लक्षण सम-झना चाहिये । रूप सुफेद, नीला, पीला,लाल,हरा,कपिश (कालापीला) और चित्र इन भेदोंसे सात प्रकारका है । वह जल और तेजमें रहताहै । पृथिवीमें सात प्रकारका-

होताहै। जिसमें चमक तो न हो सफेद हो ऐसा रूप जलमें है। चकमदार और सफेद तेजमें है।

॥ इति रूपनिरूपण ॥

रसनाग्राह्यो गुणो रसः। स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात्षड्विधः। पृथिवीजलवृत्तिः। पृथिव्यां षड्विधः। जले मधुर एव।

जीभसे मालूम हो ऐसा गुण रस है। वह—मीठा, खट्टा, खारा, कडुवा, कषैला और तीता, इन भेदोंसे छः प्रकारका है, पृथिवी और जलमें रहताहै। पृथिवीमें छः प्रकारका है, जलमें केवल मीठाही है।

॥ इति रसनिरूपण ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः। स च द्विविधः—सुरभिरसुरभिश्च। पृथिवीमात्रवृत्तिः।

नासिकासे जानाजाय ऐसा गुण गंध है। वह दो प्रकारका है–सुगन्ध और दुर्गन्ध। केवल पृथिवीमें रहताहै।

॥ इति गन्धनिरूपण ॥

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः। स्पर्शः स त्रिविधः-शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्। पृथिवीजलतेजोवायुवृत्तिः। तत्र शीतो जले, उष्णस्तेजसि, अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः।

केवल त्वचा इन्द्रियहीसे मालूम पडे ऐसा गुण स्पर्श है। संयोग इत्यादिमें अतिव्याप्ति न हो इससे 'मात्र' पद कहा-है। आँखसे मालूम न पडे और त्वचासे ग्रहण कियाजाय ऐसा गुणोंका विभाग करनेवाला उपाधिवाला होना यह स्पष्ट अर्थ हुआ। वह गुण तीन प्रकारका है–ठंढा, गर्म, न ठंढा न गर्म। वह स्पर्श पृथिवी, जल और तेजमें रहताहै। जलमें ठंढा ही स्पर्श है। तेजमें गर्म है। पृथिवी और वायुमें मध्यम (न शीत न गर्म) है।

॥ इति स्पर्शनिरूपण ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च। अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यमनित्यगतमनित्यम्।

रूप रस गन्ध और स्पर्श यह चार गुण पृथिवीमें पकानेसे उत्पन्न होतेहैं और वह अनित्य हैं। परन्तु परमाणुओंमें जो रूप रस आदि हैं वह अग्निसंयोगसे नहीं होते और नित्य हैं, द्व्यणुकादिमें भी वैसेही हैं पर अनित्य हैं अग्नि इत्यादि तेजके संयोगसे पहिले रूपका नाश और दूसरे रूपकी उत्पत्ति होतीहै, न्यायकी एक शाखा वैशेषिक शास्त्रका मत है कि पाक परमाणुओंमें ही होताहै द्व्यणुकादिमें नहीं, जब घड़ा भट्टीमें डाला जाताहै उस समय परमाणुओंमें दूसरे रूपकी उत्पत्ति होनेपर् काले घड़ेके नष्ट होजानेसे फिर द्व्यणुककी उत्पत्ति इत्यादि क्रमसे लाल घड़ेकी उत्पत्ति होतीहै वहां परमाणु समवायिकारण हैं, तेजका

संयोग असमवायिकारण है, अदृष्ट (धर्म अधर्म) आदि निमित्तकारण हैं, द्व्यणुक इत्यादिमें जो कारण-का रूप हैं वह असमवायिकारण है यह पीलुपाकवादी वैशेषिक कहतेहैं । परन्तु नैयायिक लोग मानतेहैं कि, पहले घड़ेका नाश नहीं होता घड़के परमाणुओंतक अवयवोंमें एकही समय दूसरा रूप (पककर लालरंग) होजाताहै । इसी कारणसे पृथिवीके परमाणुके रूप, रस इत्यादि अनित्य हैं । जल इत्यादिमें पकानेसे नहीं होनेवाले रूप,रस,गन्ध और स्पर्श नित्य और अनित्य हैं, रूप रस, गन्ध और स्पर्श जब प्रकट होतेहैं तो प्रत्यक्ष होजातेहैं जब प्रकट होनेकी योग्यता नहीं होती तो अनुद्भूतरूप रहतेहैं ।

संक्षेपसे खुलासा यह है कि—वैशेषिक लोग पर-माणुओंमें ही पाक मानतेहैं । जब अग्निका वेग अधिक होजाताहै उस समय परमाणुओंके बीच ताड़नके योग होनेसे अवश्य ही उनमें क्रिया होतीहै । उससे

विभाग, उससे आरंभ हुए संयोगका नाश होने-पर अवश्य अवयवीके प्रत्येक अवयवका नाश होता-है । फिर स्वतन्त्र परमाणुओंमें दूसरे रूपकी उत्पत्ति होनेपर अदृष्ट आदिकी सामग्री द्वारा परमाणुओंमें क्रिया, विभाग इत्यादि क्रमसे कथित महाअवयवीपर्यन्त उत्पत्ति होतीहै । अवयवीमें भी पाक होताहै ऐसे नैयायिकोंके मतमें यह बातहै-अग्नि इत्यादि तेजसे परमाणुओंके परस्पर विभाग और संयोग होनेपर नियमसे आरम्भ करनेवाले संयोगके प्रतिकूल विभागको उत्पन्न करनेवाली क्रियाके उत्पन्न करनेमें कोई प्रमाण नहीं है, इसमें अवयवीमें भी पाक मानना चाहिये । इसीसे पकजानेके पीछे यह वही घड़ाहै जो पहिले पीला था अब लाल होगया है, यह प्रत्यभिज्ञा होतीहै, अनेक अवयवी और उनके नाशकी कल्पना करनेमें गौरव है ।

॥ इति पाकजादिरूपादिनिरूपण ॥

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या । नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता। एकत्वं नित्यमनित्यञ्च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव ।

एक दो इत्यादि व्यवहारका कारण संख्या है । वह नव द्रव्योंमें रहतीहै । एकसे लेकर परार्धतक होतीहै । एक शब्दमें रहनेवाला एकत्व नित्य और अनित्य दो प्रकारकाहै । आत्माआदि नित्य पदार्थोंमें रहनेवाला एकत्व नित्य और घट पट आदि अनित्य पदार्थोंमें रहनेवाला एकत्व अनित्य है, दोनोंके ऊपर रहनेवाला द्वित्व इत्यादि तो सब स्थानोंमें अनित्य ही है ।

॥ इति संख्यानिरूपण ॥

मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणम् । नवद्रव्यवृत्ति । तच्चतुर्विधम्—अणु, महत्, दीर्घं, ह्रस्वं चेति ।

नापनेके व्यवहारका मुख्य कारण परिमाण कहा जाताहै वह नव द्रव्योंमें रहताहै । वह परिमाण चार प्रकारका है—स्थूल, सूक्ष्म, बड़ा और छोटा ।

॥ इति परिमाणनिरूपण ॥

पृथग्व्यवहारासाधारणं कारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्ति ।

यह चीज इससे अलग है इस व्यवहारका मुख्य कारण पृथक्त्व है। नौ ही द्रव्योंमें रहताहै ।

॥ इति पृथक्त्वनिरूपण ॥

संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ।

यह दो पदार्थ मिले हुए हैं इस व्यवहारका कारण संयोग है सभी द्रव्योंमें रहताहै।संख्या इत्यादिके लक्षणोंमें सब स्थानमें दिशा और काल इत्यादिमें अतिव्याप्ति दूर करनेके लिये'संयुक्तव्यवहारासाधारणहेतुः संयोगः'

ऐसा लक्षण कहना चाहिये। संयोग दो प्रकारका होताहै-कर्मसे उत्पन्न हुआ, और संयोगसे उत्पन्न हुआ। पहला-हाथसे पुस्तक आदिका, दूसरा- हाथ और पुस्तकके संयोगसे देह और पुस्तकका संयोग।

॥ इति संयोगनिरूपण ॥

संयोगनाशको गुणो विभागः। सर्वद्रव्यवृत्तिः।

संयोगका नाशकरनेवाला गुण विभाग है, सब द्रव्योंमें रहताहै। काल, दिशा इत्यादिमें लक्षण न चला जाय इससे गुण कहा। रूप, रस इत्यादिके वारण करनेके लिये 'संयोगनाशक' ऐसा पद कहा है। विभाग दो प्रकारका-है-कर्मसे उत्पन्न होनेवाला, और विभागसे उत्पन्न होनेवाला। कर्मसे उत्पन्न होनेवाला-हाथकी क्रियासे हाथ और पुस्तकका विभाग, दूसरा-हाथ और पुस्तकके विभागसे देह और पुस्तकका विभाग।

॥ इति विभागनिरूपण ॥

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे। पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिनी। ते द्विविधे-दिक्कृते कालकृते च। दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्, समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम्। ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम्; कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम्।

काशी प्रयागसे पूर्व है, फाल्गुनसे चैत्र पर है इस व्यवहारके असाधारण कारण परत्व और अपरत्व हैं, पृथिवी, जल, तेज, वायु और मनमें रहतेहैं। वह दो प्रकारके हैं-दिशासम्बन्धी और कालसम्बन्धी, दूर स्थान हो तो दिशासम्बन्धी परत्व-जानना चाहिये। समीप हो तो दिशासम्बन्धी-अपरत्व। समयसे जो बड़ा हो उसमें कालसम्बन्धी-परत्व और छोटेमें कालसम्बन्धी-अपरत्व जानना चाहिये।

॥ इति परत्वापरत्वनिरूपण ॥

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवी-जलवृत्ति ।

किसी पदार्थके पहिले गिरनेका असमवायिकारण गुरुत्व कहा जाताहै, दूसरे वारका गिरना तो वेगहीसे उत्पन्न होताहै इससे पहिला ही गिरना लेना चाहिये ।

॥ इति गुरुत्वनिरूपण ॥

स्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिवीजलतेजोवृत्ति । तद्द्विविधं-सांसिद्धिकं नैमित्तिकं चेति । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवी-तेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ।

चूनेका असमवायिकारणद्रवत्व कहाजाता है,पृथिवी, पानी और तेजमें रहताहै। वह दो प्रकारका है,स्वाभाविक और अग्निसंयोगसे उत्पन्न होनेवाला । स्वाभाविक पतलापन जलमें होताहै । तेजके संयोगसे पृथिवी और तेजमें

रहताहै वह दो प्रकारका है-स्वाभाविक और अग्निसंयोगसे उत्पन्न होनेवाला। स्वाभाविक पतलापन जलमें होताहै। तेजके संयोगमे पृथिवी और तेजमें रहता है। घृत, लाख इत्यादि पृथिवी में अग्निके संयोगसे पतलापन होताहै। सुवर्ण इत्यादि तैजस पदार्थोंमें भी अग्निके द्वारा होताहै।

॥ इति द्रवत्वनिरूपण ॥

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। जलमात्र-वृत्तिः।

पिसीहुई चीजको गोला (इकट्ठा) बनानेका कारण स्नेह है केवल जलमें रहताहै। यद्यपि समय भी कारण है कि जिस समय वह पिसी चीज सानी जातीहै परन्तु वह गुण नहीं है। रूप, रस इत्यादिमें अतिव्याप्ति न होजावे इससे पिण्डीभाव कहा। क्योंकि इकट्ठा करना एक प्रकारसे संयोग ही है।

॥ इति स्नेहनिरूपण ॥

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः। आकाशमात्रवृत्तिः। स द्विविधः-ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्चेति। ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः।

जो कानसे सुनाईपडे ऐसा गुण शब्द है, केवल आकाशमें रहताहै। कानसे शब्दकी जाति भी प्रत्यक्ष होतीहै, जैसा—नगारेका शब्द, वीणाका शब्द, बाँसुरीका शब्द इत्यादि उनमें अतिव्याप्ति न हो इससे गुण कहाहै। रूप इत्यादिमें अतिव्याप्ति न हो इसलिये श्रोत्र पद कहा गयाहै। शब्द दो प्रकारका है—ध्वनिस्वरूप और वर्णस्वरूप, नगारे आदिमें ध्वनिस्वरूप और संस्कृत भाषामें जो बोला जाताहै वह वर्णस्वरूप है। यथार्थ तो शब्द तीन प्रकारका है—संयोगसे उत्पन्न होनेवाला, विभागसे उत्पन्न होनेवाला, और शब्दसे उत्पन्न होनेवाला। उनमें संयोगसे उत्पन्न होनेवाला जैसा नगाड़ा और उसको ताड़न करनेवाली लकड़ीसे। विभागसे उत्पन्न होनेवाला जैसे बांसको चीरो

तो दो टुकडे होनेमें चट चट शब्द होताहै । शब्दसे उत्पन्न होनेवाला यह कि जहां बीन बजी वहांसे कान तक आनेमें एक शब्दसे दूसरा शब्द उससे तीसरा, इस प्रकार पहिला शब्द दूसरे शब्दको उत्पन्न करताहै । ऊपर तीन प्रकारका जो शब्द कहा है उसमें पहिले शब्दमें नगाड़ा और आकाशका संयोग होना असमवायिकारण है, नगाड़े और लकडीका संयोग निमित्त कारण है । विभागसे उत्पन्न होनेवाले शब्दमें—बांसके टुकडे और आकाशका विभाग आसमवायि कारण है। दो टुकड़ोंका विभाग निमित्तकारण है । शब्दसे उत्पन्न होनेवाले शब्दमें पहिला पहिला शब्द असमवायि कारण और उस शब्दको लेजानेवाला वायु आदि निमित्त कारण हैं ।

॥ इति शब्दनिरूपण ॥

सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः । सा द्विविधा-स्मृतिरनुभवश्च ।

संसारके सभी व्यवहारका कारण ज्ञान-बुद्धि है। बुद्धि दो प्रकारकी है—स्मृति और अनुभव। समय और दिशा आदिमें लक्षण न चला जाय इससे गुण पद कहा है। रूप आदिमें अतिव्याप्ति न हो इससे सर्वव्यवहारका कारण ऐसा पद कहा है। मैं जानताहूं ऐसा जो पीछे से भान होताहै यही लक्षणका प्रमाण करानेवाला है यथार्थ तो जाननामात्र बुद्धि है।

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। तद्भिन्नं ज्ञान-मनुभवः। स द्विविधः—यथार्थोऽयथार्थश्चेति। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः, यथा 'अयं घटः' इति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते।

केवल भावना नामके संस्कारसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान स्मृति है, उससे भिन्न ज्ञान अनुभव है। संस्कारके

ध्वंसमें अतिव्याप्ति न हो इस लिये ज्ञान पद मूलमें कहा है। यह घडा है ऐसा जब घड़ेका प्रत्यक्ष हुआ उससे अतिव्याप्ति रोकनेके लिये संस्कारजन्य ऐसा कहा है। यह वही घड़ा है ऐसी प्रत्यभिज्ञामें अतिव्याप्ति दूर करनेके लिये मात्र पद दिया गया है । इस स्मृतिसे भिन्न ज्ञान अनुभव है, वह दो प्रकारका है-यथार्थ और अयथार्थ । उसी पदार्थमें उसके धर्मसे होनेवाला अनुभव यथार्थ है। जैसा—घड़ेको देखके यह घड़ा है ऐसा ज्ञान होताहै यही प्रमा कही जाती है ।

तदभाववति तत्प्रकारकश्चायथार्थः ।

ठीक वह पदार्थ तो हो नहीं, पर वैसा मालूम पड़े वह अयथार्थ ज्ञान है ।

यथार्थोनुभवश्चतुर्विधः-प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशब्दभेदात् । तत्करणमपि चतुर्विधम्—प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ।

यथार्थ अनुभव चार प्रकारका है–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। उसका साधक भी चार प्रकारका है–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। उसका करण (प्रधान सिद्धकरनेवाला) भी चार प्रकारका है प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान और शब्द इन प्रकारोंसे।

असाधारणं कारणं करणम्।

कोई भी कार्य हो उसमें दिशा, काल इत्यादि भी कारण होतेहैं इसलिये असाधारण (मुख्य) कारण करण होताहै। प्राचीन नैयायिक लोग 'व्यापारवत्त्वे सति असाधारणं कारणं करणम्' अर्थात् किसी प्रकारकी क्रियावाला होकर जो असाधारण कारण है वह करण है ऐसा कहतेहैं इससे आँखके संयोग आदिमें अव्याप्ति नहीं होती। कान और मनका संयोग अथवा शब्द व्यापार होता ही है इससे कानमें कारण लक्षणकी अव्याप्ति नहीं होती ऐसा

कहतेहैं। नवीन नैयायिक मानते हैं कि, जिसके विलम्बसे कार्यमें विलम्ब होताहै ऐसे कारणको असाधारण कारण कहतेहैं काल, दिशा आदिकोंमें ऐसा कारण नहीं है इससे अतिव्याप्ति नहीं होती। व्यापार हो ऐसा इन्द्रिय संयोग-ही कारण होताहै, यह सब 'लिंगपरामर्शोऽनुमानम' इस मूलहीमें खुलासा होजायगा।

कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्।

किसी काममें अवश्य पहले रहनेवाला कारण होताहै 'पूर्ववृत्ति कारणम्'। पहले रहनेवाला कारण है इतना ही लक्षण किया जाय तो घडेके बनानेके लिये जो गधा या घोडेसे मिट्टी लाई जाती है उससे गधा आदि भी कारण होने लगेंगे इससे नियत शब्द कहाहै-अर्थात् जिसके पहले न रहने विना काम होही न सके ऐसा कहा। इससे मिट्टी ही ऐसी है कि वह न हो तो घडा बनही न सकता वही कारण है।

सूतका रूप भी कपड़ा बननेमें कारण है ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि "अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वम् कारणत्वम्" अर्थात् विना उसके रहनेसे काम न होसके, वह अवश्य पहले रहे, ऐसा कारण मानागयाहै । दूसरी तरहसे काम न होसके यही अनन्यथा सिद्ध है । अन्यथासिद्ध तीन प्रकारका है–जिसके साथ जिसका पहिले रहना होताही है वह उससे अन्यथासिद्ध कहा जाताहै। जैसा सूतके साथ सूतके रंगका रहना, सूतपना कपडेमें दूसरेके प्रति पहिले रहना जानने पर जिसका जिसके साथ पहिले रहना मालूम किया जाय वह भी अन्यथासिद्ध है, जैसे शब्दके प्रति पहिले रहना आकाशका जानकर ही घड़ेकी उत्पत्तिमें आकाशका पहिले रहना अन्यथासिद्ध है । और स्थानमें अवश्य पहिले रहनेवालेहीसे कार्य हो सक्ताहै तो उसके साथ रहना यह अन्यथासिद्ध है, जैसा–घड़ा

आदि पककर जब बनताहै वहां गन्धमें रूपके प्रागभावको अन्यथासिद्धत्व है। इस प्रकार अनन्यथासिद्ध नियमसे कार्यके पहिले रहनेवाला कारण है।

कार्यं प्रागभावप्रतियोगि।

पहिले जो नहीं था उसका प्रतिकूल कार्य है जैसा-पहिले घड़ा नहीं था केवल मिट्टी थी उसको पानी-में सानकर कुम्हारने चक्रमें रखकर घड़ा बना दिया।

कारणं त्रिविधं—समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्। यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तवः पटस्यापटश्च स्वगतरूपादेः। कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत्कारणं तदसमवायिकारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य। तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्। यथा तुरीवेमादिकं पटस्य।

कारण तीन प्रकारका है–समवायि, असमवायि और निमित्त। जिसमें समवायसम्बन्धसे कार्य उत्पन्न होताहै वह समवायि कारण है। जैसे सूत कपड़ेके समवायि कारण हैं, क्योंकि सूतके विननसे कपड़ा बनताहै, और कपड़ा अपने रूपका समवायिकारण है, क्योंकि जब कपड़ा बना तब उसका रूप भी हुआ। कार्य वा कारणके साथ एक प्रयोजनमें समवायसम्बन्धसे रहनेपर जो कारण है वह असमवायि कारण है। जैसा कार्य वस्त्रके साथ तागोंका संयोग वस्त्ररूप कार्यसिद्धिके लिये तागोंमें नित्य सम्बन्धसे रहताहै। इसके तागोंका एक दूसरे से मिलना कपडेका असमवायिकारण हुआ। और तागोंका रूप वस्त्रके रूपका असमवायिकारण हुआ। क्योंकि कारण जो वस्त्र उसके साथ तागोंमें समवाय सम्बन्धसे रहनेसे। इन समवायि और असमवायि दो कारणोंसे भिन्न तीसरा निमित्त कारण है।

तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् । तत्र प्रत्यक्षज्ञानकारणं प्रत्यक्षम्। इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। तद्द्विविधम्—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति। तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा डित्थोऽयं, ब्राह्मणोऽयं, श्यामोऽयमिति ।

उक्त तीन कारणोंके बीचमें जो प्रधान कारण है वही करण है, प्रत्यक्ष ज्ञानका कारण प्रत्यक्ष कहाताहै । इन्द्रिय और पदार्थोंके संयोगसे जो ज्ञान होताहै वह प्रत्यक्ष है । जैसे आंख इन्द्रिय और पदार्थ घड़ा इन दोनोंके संयोगसे घडेका प्रत्यक्ष होताहै । वह दो प्रकारका है—सविकल्पक और निर्विकल्पक । विशेष्य विशेषणसम्बन्धका कुछ ज्ञान न हो वह निर्विकल्पक

ज्ञान है । गाय यह विशिष्टज्ञान, विशेषणज्ञानसे होताहै क्योंकि यह विशिष्ट ज्ञान है। यह पुरुष लाठी लिये हुए है—इस ज्ञानके समान इस अनुमानके प्रमाण होनेसे । विशेषण ज्ञान भी सविकल्पक होताहै ऐसा कहा जाय तो अनवस्था होजावेगी, इससे निर्विकल्पकज्ञान सिद्ध हुवा । नाम,जाति इत्यादि उक्त ज्ञान सविकल्पक कहाता है । जैसा यह डित्थ है, यह ब्राह्मण है, यह काला है इत्यादि ।

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः- संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति । चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः १ । घटरूपप्रत्यक्षे संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः २ । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् । रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः ३ । चक्षुः-

सन्निकर्षे घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात्। श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः ४। कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वात्, शब्दस्य चाकाशगुणत्वात्,गुणगुणिनोश्च समवायात्।शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः ५। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्। अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः ६। घटाभाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात्। एवं सन्निकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्, तत्करणमिन्द्रियम्। तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम्।

॥ प्रत्यक्षं व्याख्यातम् ॥

प्रत्यक्षज्ञानका कारण इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध छः प्रकारका है—संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्त समवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय

और विशेषणविशेष्यभाव । आँखसे जहां घडेका प्रत्यक्ष हो वहां संयोग सन्निकर्ष (सम्बन्ध) है उसका नियम यह है-आत्मा मनके साथ, मन का इन्द्रियोंके साथ, इन्द्रिय पदार्थके साथ जब संयोग करताहै । तब प्रत्यक्ष होताहै १ । घड़ा काला, लाल जैसा हो उसके प्रत्यक्ष होनेमें संयुक्तसमवाय सम्बन्ध है, क्योंकि आंखका संयोग घडेसे हुआ उस घडेमें काला, लाल आदि रूप समवाय सम्बन्धसे रहताहै २ । उस रूपका भी जब काला अथवा लालपना प्रत्यक्ष हो तब संयुक्तसमवेतसमवाय-सम्बन्ध है. क्योंकि आँखसे संयुक्त (मिले-हुए) घडेमें काला, लाल आदि रूप समवाय सम्बन्धसे रहता है, उस रूपमें भी कालापन और लाली समवाय-सम्बन्धसे रहतीहै ३ । कानसे जब शब्दका प्रत्यक्ष हुआ तो समवाय सन्निकर्ष है । कानके छिद्रमें जो आकाश-है उसका गुण शब्द है, गुण और गुणियोंका समवाय-सम्बन्ध होताहै ४ । जब शब्दका धर्म अर्थात् सिता-

का शब्द, नगारेका शब्द, बाँसुरीका शब्द इत्यादि शब्दोंमें जो विशेष ध्वनि है जिसके बलसे शब्दका प्रत्यक्ष होताहै कि, यह सितारका शब्द है, यह मृदंगका है इत्यादि वही शब्दत्व है उसके प्रत्यक्षमें समवेतसमवाय सन्निकर्ष है, क्योंकि कानसे शब्दका प्रत्यक्ष हुआ उस शब्दमें मधुर सुनाई पड़ना, तीव्र सुनाई पडना इत्यादि समवाय सम्बन्धसे रहताहै ५। जहां अभावका प्रत्यक्ष होताहै कि, मेज़ पर किताब नहीं है, नदीमें पानी नहीं, उस स्थान पर विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध है, जैसा—पूर्वोक्त वाक्यमें आंखका सम्बन्ध मेजसे है उससे प्रत्यक्ष होताहै कि, मेजमें पुस्तक नहीं है। इस प्रकार ६ सन्निकर्षोंके द्वारा जो ज्ञान होताहै वह प्रत्यक्ष कहा जाताहै। उसका प्रत्यक्ष करनेवाला इन्द्रिय है इससे इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण- है, यह सिद्ध हुआ।

॥ इति प्रत्यक्षपरिच्छेदनिरूपण ॥

अनुमतिकरणमनुमानम्। परामर्शजन्यं ज्ञान-मनुमितिः ।

अनुमितिका करण अनुमान होताहै।परामर्शसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अनुमिति कही जातीहै । यहां शङ्का होतीहै कि, जहां संशय होनेके पीछे जब प्रत्यक्ष होताहै वहां अति व्याप्ति होगी–अन्धकारमें यह खंभा है या कोई मनुष्य ? ऐसा सन्देह होनेके पीछे, पुरुषके चिह्न–हाथ पैरोंसे युक्त यह पुरुष ही है ऐसा प्रत्यक्ष होताहै। यह भी अनुमान ही है क्योंकि पुरुषको मैं प्रत्यक्ष देखताहूँ ऐसा पीछेसे जो ज्ञान होताहै वह अनुमान ही है ऐसा नहीं कह सकते, पक्षतासहित परामर्शज्ञानसे हुआ अनुमान चाहिये, पर्वतमें अग्निके सिद्ध करनेकी इच्छा सिषाधयिषा कही जातीहै उससे रहित सिद्धिका न होना पक्षता कही जाती है।

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' इति ज्ञानं परा-

मर्शः । तज्जन्यं पर्वतो वह्निमान् इति ज्ञान-
मनुमितिः ।

जहां जहां धूम है वहां वहां अवश्य अग्नि रहतीहै यह धूम और आग्निका साथ रहना व्याप्ति है, ऐसी व्याप्तिके सहित जो है वह व्याप्तिविशिष्ट कहा जाता है, उसका पर्वतमें रहना परामर्श होताहै,जैसे अग्नि व्यापक है धूम उसका व्याप्य है. जहां धूम है वहां अग्नि अवश्य है, ऐसे धूमवाला यह पर्वत है, यह ज्ञान परामर्श कहा जाता है। उस परामर्शसे पर्वत आग्निवाला है (इस पर्वतमें अग्नि है) यह ज्ञान अनुमिति होतीहै ।

यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः।

जहां धुवां है वहां अग्नि अवश्य है यह नियमसे साथ रहना व्याप्ति कही जातीहै ।

व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ।

धूमका पर्वत, रसोईके घर आदिमें रहना पक्षधर्मता कही जातीहै ।

अनुमानं द्विविधम्—स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः। तथाहि स्वयमेव भूयो दर्शनेन यत्र धूमस्तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतः तद्गते चाग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति-यत्र धूमस्तत्राग्निरिति,तदनन्तरं वह्नि-व्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानम्—उत्पद्यते, अयमेव लिङ्गपरामर्श उच्यते। तस्मात् पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः—उत्पद्यते। तदेतत्स्वार्थानुमानम्।

अनुमान दो प्रकारका है—स्वार्थ (अपने लिये) और परार्थ (दूसरेके लिये)। अपनेको अनुमान होनेके लिये जो अनुमान किया जाता है वह स्वार्थ अनुमान है। उसको दिखाते हैं—स्वयं बहुत बार देखनेसे रसोईमें धुआं और अग्निकी व्याप्ति—जहां जहां धुंवा होताहै वहां अग्नि होवे

है यह निश्चय करके पहाड़के पास गया, वहां अग्नि है कि नहीं, ऐसा सन्देह करने लगा । इतनेमें पर्वतमें धुवां देखकर व्याप्तिको स्मरण करताहै कि—जहां धुँवां है वहां अवश्य अग्नि होतीहै । उसके पीछे वह्निव्याप्य धूमवाला यह पर्वत है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होताहै यही लिङ्गपरमर्श है । उससे फिर पर्वत अग्निवाला है ऐसा ज्ञान होताहै । यह स्वार्थानुमान है ।

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परप्रतिपत्त्यर्थं पञ्चावयव वाक्यं प्रयुज्यते, तत्परार्थानुमानम् । यथा पर्वतो वह्निमान् १, धूमवत्त्वात् २, योयो धूमवान् ससोऽग्निमान् यथा महानसम् ३, तथा चायम् ४, तस्मात्तथा ५, इति । अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ॥ प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः । पर्वतोऽग्निमानिति

प्रतिज्ञा। धूमवत्त्वादिति हेतुः। योयो धूमवान् ससोऽग्निमान् यथा महानसम् इत्युदाहरणम्। तथा चायमित्युपनयः। तस्मात्तथेति निगमनम्।

जो स्वयं धूमसे अग्निका अनुमान करके दूसरे मनुष्यको समझानेके लिये पांच अङ्गोंवाला वाक्य कहा जाता है वह **परार्थानुमान** कहा जाता है। पर्वत अग्नियुक्त है १। उसमे धुंआँ देख पड़ताहै २। जहांजहां धुंआँ रहताहै वहांवहां अग्नि रहताहै जैसे रसोई ३। यह (पर्वत) भी वैसा (धुआँवाला) ही है ४। इससे वैसा (अग्निवाला) है ५। इस अनुमानके प्रमाणसे दूसरा मनुष्य भी पर्वतमें आगका होना समझ सकताहै॥ प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, और निगमन ५ यह पांच अवयव कहे जाते हैं। जिसके सिद्धकरना हो वह पर्वत इत्यादि स्थानोंमें है इसके

प्रतिज्ञा कहतेहैं, जैसे—यह पर्वत अग्नि सहित है। पञ्चमी विभक्ति अन्तमें हो और कारण बतलानेवाला हो वह हेतु है, जैसे धूमवाला होनेसे, व्याप्ति (साथमें रहना) को दिखानेवाला वचन उदाहरण कहाताहै । व्याप्तियुक्त हेतुको कहनेवाला वाक्य उपनय होताहै । अर्थात वैसा (धूमवाला) यह है । हेतु और साध्य दोनों पर्वतादि (पक्ष) में हैं ऐसा बतानेवाला वचन निगमन कहा जाताहै, जैसे—वैसा (अग्निवाला) है। पक्षका जानना प्रतिज्ञाका प्रयोजन है । लिङ्गका ज्ञान हेतुका प्रयोजन है । व्याप्तिका ज्ञान उदाहरणका प्रयोजन है । पक्षधर्मताज्ञान उपनयका प्रयोजन है। अबाधित्वादि निगमनका प्रयोजन है ।

स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ।

स्वार्थानुमान हो अथवा परार्थानुमान हो उनमें लिङ्गपरामर्श ही करण है। इससे लिङ्गका परामर्श ही अनुमान-

है । यहां यह शङ्का हो सकतीहै कि, व्याप्तिका स्मरण और पक्षधर्मताज्ञान इन दोनोंहीसे अनुमान सिद्ध हो सकताहै तो 'वह्निव्याप्यधूमवालापर्वत' ऐसा विशिष्ट परामर्श क्यों मानना ? यह शङ्का ठीक नहीं है।जब परामर्श नहीं माना जायगा तो 'वह्निमें रहनेवाले धूमसे युक्त यह पर्वत है' ऐसा शाब्दपरामर्श जहां हो वहां क्या किया जायगा ? जब कि उसके लिये आपको विशिष्ट परामर्श मानना ही पड़ेगा तो सब स्थानोंमें वही परामर्श माननेमें क्या दोष है।दूसरा यह भी दोष है कि,लिङ्गही से जो अनुमान माना जाय तो नदीकी बाढ़को देखकर जहां अनुमान होताहै कि, कहीं अवश्य वृष्टि हुईहै जिससे नदी इतनी बढ आई है वहां लिङ्ग (वृष्टि) ज्ञान नहीं है इससे भी लिङ्गपरामर्श अवश्य मानना चाहिये।'व्यापारवत्कारणं करणम्' व्यापारयुक्त कारण ही करण कहाता है, इस मतमें परामर्शके द्वारा व्याप्तिज्ञान करण होताहै 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः' अर्थात

उससे उत्पन्न और उससे उत्पन्न होनेवालेका उत्पादक व्यापार कहलाता है ।

लिङ्गं त्रिविधम्–अन्वयव्यतिरेकि, केवलान्वयि,केवलव्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि, यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निरित्यन्वयव्याप्तिः। यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोपि नास्ति, यथा महाह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः । अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्, पटवत् । अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति, सर्वस्यैव प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च, व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा जलम् । न चेयं तथा ।

तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत्, तदितर-भिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति, पृथिवीमात्र-स्य पक्षत्वात् ।

लिङ्ग तीन प्रकारका है—अन्वयव्यतिरेकि १, केवलान्वयि २, और केवलव्यतिरेकि ३ । अन्वय और व्यतिरेकसे व्याप्तिवाला अन्वयव्यतिरेकि कहा जाता है, जैसे अग्नि सिद्ध करनेमें धूमवाला होना। कारण और कार्यकी व्याप्ति अन्वयव्याप्ति होती है। जैसे जहाँ धुवाँ है वहाँ अग्नि है । उसके विरुद्ध व्यतिरेकव्याप्ति है, जैसे जहां धुवाँ नहीं वहां अग्नि भी नहीं होता, जैसे बडा तालाब । जहां केवल अन्वयहीमें व्याप्ति है वहां केवलान्वयि होता है। जैसे—घड़ा नामवाला पदार्थ है, प्रमा करनेके योग्य होनेसे, कपड़ेके समान । यहां अभिधेयत्व और प्रमे-यत्वकी व्यतिरेकव्याप्ति नहीं है क्योंकि संसारके सभी पदार्थ प्रमेयत्व व अभिधेयत्ववाले हैं ॥ केवल व्यतिरेकमें

जेसकी व्याप्ति हो उसे केवलव्यतिरेकि कहते
ं, जैसे पृथिवी—जल, तेज इत्यादिकोंसे अलग है,
न्धवाली होनेसे । जो और पदार्थोंसे भिन्न नहीं
ोता वह सुगन्धवाला भी नहीं, जैसा पानी, और यह
थिवी तो वैसी नहीं है, इससे वैसी नहीं । यहां; जो
न्धवाला है वह, दूसरोंसे अलग है ऐसा अन्वयवाला
ष्टान्त नहीं है क्योंकि केवल पृथिवी ही पक्ष है ।

सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः, यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः । निश्चितसाध्यवान् सपक्षः, यथा तत्रैव महानसम् । निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः, यथा तत्रैव महाह्रदः ।

अनुमानसे सिद्ध करने योग्य (अग्नि आदि) साध्य-
ा जहां सन्देह हो उसको पक्ष कहतेहैं, जैसे धूमवाले
हेतुमें पर्वत । जहां साध्यका निश्चय हो वह सपक्ष है

जैसे उसी उदाहरणमें महानस। जहां साध्यका अभाव निश्चित हो वह विपक्ष है, जैसे उसी स्थानमें बड़ा तालाव।

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः। सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः। स त्रिविधः—साधारणाऽसाधारणाऽनुपसंहारिभेदात्।

सत् हेतुओंको कहके असत् हेतुओंको कहतेहैं—सव्यभिचार १, विरुद्ध २, सत्प्रतिपक्ष ३, असिद्ध ४, और बाधित ५, यह पांच हेत्वाभास कहेजातेहैं। हेतुओंके समान मालूम पडतेहैं, परन्तु यथार्थमें यह हेतु नहीं इसीसे 'हेत्वाभास' अथवा 'असद्धेतु' कहे जातेहैं। जिसका ठीक ठीक नियम न हो वह सव्यभिचार होता है। वह तीन प्रकारका है—साधारण १, असाधारण २, और अनुपसंहारी ३।

तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः, यथा पर्वतोऽग्निमान् प्रमेयत्वादिति प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात्। सर्वसपक्ष(विपक्ष) व्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिः असाधारणः, यथाशब्दोऽनित्यः शब्दत्वादिति। शब्दत्वं हि सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यो व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति । अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी, यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि प्रमेयत्वाद्दृष्टान्तो नास्ति ।

उन साधारण,असाधारण और अनुपसंहारियोंके बीचमें साध्यके अभाववालेमें रहनेवाला साधारण अनैकान्तिक है, जैसे पर्वत अग्नियुक्त है, प्रमाण करनेयोग्य होनेसे, इस प्रकार प्रमाण करने योग्य (प्रमेय) के भावका अग्निके अभाववाले तालावमें भी रहना है ही। तब सपक्ष(विपक्ष)

से भिन्न केवल पक्षमें रहनेवाला असाधारण है। जैसे शब्द अनित्य है, शब्दपना रखनेसे, शब्दमें जो शब्दपना है वह सभी नित्य और अनित्योंसे अलग है और शब्द हीमें रहता है। अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्तसे रहित अनुपसंहारी है। जैसे सभी अनित्य हैं, प्रमाणकरने योग्य होनेसे, यहां सभी प्रमेयमें आगया फिर दृष्टान्त किसका दिया जा सकताहै।

साध्याभावव्याप्तोहेतुर्विरुद्धः,यथा-शब्दोनित्यः कृतकत्वादिति।कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेना-नित्यत्वेन व्याप्तम्॥ यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं स सत्प्रतिपक्षः। यथा—शब्दो नित्यः श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्।शब्दोऽनित्यःकार्य-त्वात्, घटवदिति॥ असिद्धस्त्रिविधः—आश्र-यासिद्धः, स्वरूपासिद्धो, व्याप्यत्वासिद्धश्चे-ति। आश्रयासिद्धो यथा-गगनारविन्दं सुरभि,

अरविन्दत्वात्, सरोजारविन्दवत्-इति । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नास्त्येव । स्वरूपासिद्धो यथा-शब्दो नित्यः, चाक्षुषत्वात, रूपवदिति। अत्र चाक्षुषत्वं पक्षे नास्ति, शब्दस्य श्रावणत्वात् ।

साध्यके अभावमें रहनेवाला हेतु विरुद्ध है, जैसे शब्द नित्य है क्योंकि वह कियाजाताहै। कियाजाना नित्यताके विरुद्ध अनित्यासे व्याप्त है । जिसका साध्यके अभावको सिद्ध करनेवाला दूसरा कारण हो वह सत्प्रतिपक्ष है, जैसे शब्द नित्यहै, सुनाई पडनेसे, शब्दकेधर्म (शब्दत्व)केसमान। शब्द अनित्य है क्योंकि यह कियाजाताहै, घडेके समान । असिद्ध तीन प्रकारका है—आश्रयासिद्ध, स्वरूपासिद्ध और व्याप्यत्वासिद्ध । आश्रयासिद्धका उदाहरण—आकाशका कमल सुगन्धित है, कमल होनेसे, तालाबके कमलके समान । यहां आकाशका कमल आश्रय है सो

होताही नहीं, इससे यह आश्रयासिद्ध हुआ। स्वरूपा-सिद्धका उदाहरण—शब्द नित्य है, आँखसे देखेजाने-से, रूपके समान। यहां आँखसे देखाजाना शब्दमें नहीं है, क्योंकि शब्द तो सुनाई पड़ताहै।

सोपाधिको व्याप्यत्वासिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः। साध्यसामानाधिकरण्यात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम्। साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्। यथा पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्–इत्यार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। तथाहि–यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकत्वम्। यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति, अयोगोलके आर्द्रेन्धनाभावात्–इति साधनाव्यापकत्वम्। एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधना-

ऽव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम् ।

उपाधि सहित असिद्ध व्याप्यत्वासिद्ध कहा जाता है । उपाधि चार प्रकारका होताहै—केवलसाध्यव्यापक १ । पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक २ । साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापक ३ । उदासीनधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक ४ । गीली लकडीका संयोग केवल साध्यव्यापक कहा जाता है । पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक यह है कि, वायु प्रत्यक्ष है, प्रमाणकरनेयोग्य होनेसे । यहां आत्माके अतिरिक्त बाहरके द्रव्यका जो प्रत्यक्ष होताहै उसमें रूपका प्रकटरहना चाहिये । तीसरा ऐसा है—ध्वंसाभाव विनाशी है, करण यह कि, वह उत्पन्न होनेवाला है । यहां उत्पन्न होनेवाला होनेसे अनित्यतायुक्त भाव है ।

चौथा–प्रागभाव नाशहोनेवाला है क्योंकि वह प्रमेय है यहां भी उत्पन्नहोनेवाला होनेसे अनित्यतायुक्त भाव है इसमें उत्पन्न होना–पक्षधर्म नहीं होता इससे साधनाव- च्छिन्नसाध्यव्यापकत्वघटित लक्षण हुआ । इस प्रकार उपाधिके चार प्रकार तो कहे पर उपाधि क्या चीज है इसको कहतेहैं–साध्य धूम आदिमें रहे और कारणअग्नि- आदिमें न रहे वही उपाधि है। साध्यके सामानाधिकर- ण्य अत्यन्तभावका प्रतियोगी न होना साध्यव्यापकत्व कहाताहै। साधन (अग्नि आदि) वालेमें रहनेवाला जो अत्यन्ताभाव उसका प्रतियोगीहोनासाधनाव्यापकत्वहै। जैसे पर्वत धुवाँवाला है, अग्निवाला होनेसे । यहां गीली लकडियोंका संयोग होना उपाधि है, जैसा कि जहाँ जहाँ धुआँहै वहाँ वहाँ अग्निके साथ गीली लकडियोंकासंयोगहै। इसको साध्यव्यापकत्व कहतेहैं । जहां आग है वहां गीली लकडियोंका संयोग नही है, लोहेके गर्म गोलेमें

गीली लकड़ी नहीं है यह साधनाव्यापकका उदाहरण हुआ । इससे साध्य धूमके साथ अवश्य रहने और साधन अग्निके साथ न रहनेसे गीली लकड़ियोंका अग्निके साथ संयोग होना उपाधि हुआ । उपाधियुक्त होनेसे अग्नि सहित होना व्याप्यत्वासिद्ध हुआ ।

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः, यथा—वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति । अत्रानुष्णत्वं साध्यम्, तदभाव उष्णत्वं स्पर्शेन प्रत्यक्षेण गृह्यत इति बाधितत्वम् ।

॥ व्याख्यातमनुमानम् ॥

जिसके साध्यका अभाव दूसरे प्रमाणसे निश्चित है वह बाधित है, जैसे—आग ठण्डी है, क्योंकि वह द्रव्य है यहां ठण्डा होना साध्य है, उसका अभाव गर्म होना छूनेसे प्रत्यक्ष मालूम पड़ताहै इससे बाधित हुआ । यहां पर बाधका ग्रहण करने योग्य आभावके नि-

श्रय होनेसे, सत्प्रतिपक्षका, विरोधीके ज्ञानकी सामग्रीसे, प्रत्यक्षमें अनुमानका विरोध होताहै । बाकी जो व्यभिचार ज्ञानादियोंके ग्रहण हैं वह परामर्शको नहीं होने देते । उनमें भी समानताका उसके ज्ञानके व्यभिचारी भाववाले न होनेसे, विरुद्धका सामानाधिकरण्य अभाववाले होनेसे, व्याप्यत्वासिद्धका विशिष्ट व्याप्तिके अभाव वाले होनेसे, असाधारण और अनुपसंहारीका व्याप्तिके संशय करनेवाले होनेसे व्याप्ति ज्ञानमें प्रतिबन्धकता है । आश्रयासिद्ध और स्वरूपासिद्धोंकी पक्षधर्मता ज्ञानकी प्रतिबन्धकता है और उपाधि व्यभिचारज्ञानके द्वारा व्याप्तिज्ञानका प्रतिबन्धक है । प्राचीनोंका मत है कि, सिद्धसाधन पक्षताको प्रकट करनेसे आश्रयासिद्धमें अन्तर्भूत होजाताहै । परन्तु नवीन नैयायिक कहतेहैं कि, यह निग्रहस्थानमें अन्तर्गत है ।

॥ इति अनुमाननिरूपण ॥

उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसम्बन्ध-ज्ञानमुपमितिः,तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । तथाहि—कश्चिद्गवयशब्दवाच्यमजानन्कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद् 'गोसदृशो गवयः' इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन् गोसदृशं पश्यति । तदनन्तरम् 'अयं गवयशब्दवाच्यः' इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥

॥ इत्युपमानम् ॥

संज्ञा और संज्ञीके सम्बन्धका ज्ञान उपमिति कही जाती है,उसको सिद्ध करनेवाला सादृश्य ज्ञान है । यहां संज्ञा गवय शब्द है,संज्ञी गवय पशु है, इन दोनोंकी सम्बन्धशक्ति है, इसका ज्ञान उपमिति है।इसीको स्पष्ट करके लिखतेहैं—कोई गवय शब्दसे किस पशुका बोध होताहै इस बातको नहीं जानता हुआ किसी वनमें रहनेवाले मनुष्यसे गायके समान गवय होताहै ऐसा सुनकर वनमें गया,उक्त

वाक्यके अर्थको स्मरण करता हुआ गायके समान जं
वको देखताहै उसके पीछे यही गवयशब्दसे कहा जाताहै,
ऐसी उपमिति होतीहै ।

॥ इति उपमाननिरूपण ॥

आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता वाक्यं पदसमूहः। यथा गामानय शुक्लां दण्डेनेति।

आप्तका कहना शब्द है । आप्त ठीक ठीक बातको
कहने वाला कहाताहै । पदोंका समूह वाक्य होताहै ।
जैसे सुफेद गायको लकडी हाथमें रखके ले आओ ।

शक्तं पदम् । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसङ्केतः शक्तिः ।

प्रत्येक पद शक्तियुक्त हैं । इस पदसे यह अर्थ जानना-
चाहिये यह ईश्वरका बनाया हुआ सङ्केत शक्ति है ।
अर्थात् 'घडा' ऐसा सुनते ही घडेका आकार तथा पानी
रखनेके घडेका उपयोग इत्यादि जो अर्थ मनमें

आजाताहै यह शब्दकी ईश्वर कृत शक्ति है । मीमांसक-लोग जो कि,कर्मको छोड किसीको नहीं मानते वह ईश्वरके सङ्केतको भी नहीं मानते, वह कहतेहैं कि, ईश्वरके ज्ञान,इच्छा अथवा कृतिको शक्ति नहीं कह सकते, इच्छा ही स्वतन्त्र चीज है ।और तार, युद्धमें झण्डियों, लालटीनों आदि द्वारा जो बात की जातीहैं उनमें मनुष्योंके ही सङ्केतसे व्यवहार होताहै जो कि इच्छा ही है । इससे ईश्वरेच्छा और शक्ति माननेका गौरव क्यों करना । और भगवान्‌की इच्छा सब पदार्थोंमें है जो इच्छा उनकी घडेमें है,कपडेमें भी वह इच्छा है ही,इससे घडा कहनेसे कपडेका बोध भी होने लगेगा । और गङ्गा पद प्रवाह में जैसा है तटमें भी ईश्वरकी इच्छा रहैगी ही । तब लक्षणा व्यञ्जना आदि वृत्तियोंका अभाव ही हो जावेगा इत्यादि दोषोंके कारण केवल इच्छाको शक्ति नहीं कहसकते और गङ्गा पद ईश्वरकी इच्छासे प्रवाह-हीमें शक्तियुक्त है । गङ्गामें अहीरकी झोपडी है इत्यादि उदाहरणोंमें गङ्गाके समीपमें लक्षणा मानी जाती है,

समीपमें अर्थ होनेपर भी पवित्रता और ठंढक जो भासती है वह व्यञ्जना शक्ति है। यह सब अर्थ ईश्वरकी इच्छासे ही सङ्केतित लक्ष्य और व्यङ्ग्य होवेहैं।

इस प्रकार शक्तिके सिद्ध होने पर फिर मीमांसक लोग मानतेहैं कि, गौ आदि शब्दोंकी जातिहीमें शक्तिहै, व्यक्तिमें नहीं, क्योंकि व्यक्तिमें जाति विशेषण होके रहतीहै, इसीसे पहिले उसका बोध होताहै, जैसा गायको ले आओ ऐसा कहने पर पहिले गोजाति का बोध होता है, उसका आना असम्भव होकर सूचित करता है कि गोव्यक्तिसे प्रयोजन है। इसको आक्षेप कहते हैं। नैयायिक लोग इसको नहीं मानते, वह कहते हैं कि'गायको लेआओ'इत्यादि उदाहरणोंमें शिष्टोंके व्यवहार तथा 'लाना' इस क्रियाका व्यक्तिहीमें सम्भव होनेसे जातियुक्त व्यक्तिहीमें शक्तिकी कल्पना कीजाती है।

अब यह बात रही कि किस पदकी किसमें शक्ति है–यह ज्ञानवृद्धोंके व्यवहारसे स्वयं विदित होजातीहै।

'गौको ले आओ' ऐसा कहने पर वह मनुष्य गायको ले आया। फिर 'अश्वमानय' गां 'बधान' घोडा लाओ, गायको बाँधदो ऐसा कहने पर जिस बालकको यह नहीं मालूम कि, गाय और अश्वकी शक्ति किसमें है वह बीचके पुरुष (गायके लाने और बांधनेवाले) के व्यापारको देखकर स्वयं शक्तिका ज्ञान करलेता है कि, 'गो' पदकी गोजातिवाले जीव और 'अश्व'की अश्वजातिविशिष्टमें शक्ति है इत्यादि ।

लक्षणा भी शब्दकी वृत्ति है। शक्यसम्बन्ध ही लक्षणा है । गङ्गामें अहीरकी झोपडी है। यहां गङ्गा शब्दके अर्थ प्रवाहके सम्बन्धसेही तीरकी उपस्थिति होनेपर तीरमें शक्तिकी कल्पना नहीं हो सकेगी। सैन्धव इत्यादि शब्दोंमें लवण और घोडा इनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं इससे अनेक शक्तियोंकी कल्पना होती है लक्षणा तीन प्रकारकी होती हैं—जहल्लक्षणा,अजहल्ल-

क्षणा, जहदजहल्लक्षणा। जहां शब्दके वाच्यार्थका अन्वय नहीं होसकता वहां जहल्लक्षणा होती है। जैसे आसन बोलते हैं, आसन जड हैं उनका बोलना असम्भव है, इससे आसनों पर बैठे हुए पुरुषोंका बोध होता है। जहां शब्दार्थका भी अन्वय होता है वहां अजहत लक्षणा होती है, जैसे छत्रवाले जारहेहैं। यहां मनुष्य और छत्र दोनोंका गमन होता है। जहां शब्दार्थके एक हिस्सेका त्याग और एक हिस्सेका ग्रहण होताहै वहां जहदजहल्लक्षणा होती है। जैसे तुम वही हो, अर्थात् गये साल मैंने श्रीप्रयागक्षेत्रमें जिन तुम्हें देखाथा वही हो। इस वाक्यमें भूत काल और देशका त्याग होता है। मनुष्यकी व्यक्ति वही रहती है। इनके अतिरिक्त कोई लोग एक गौण लक्षणा मानतेहैं,जैसे—'यह राजा सूर्य है' यहां 'गङ्गामें अहीरकी झोपडी' के समान गंगाके तीरमें जैसी लक्षणा मानी जाती है वैसी नहीं मानी जा सकती,

किन्तु जैसे अग्निके तेज पवित्रता इत्यादि गुण हैं ऐसे लिये जाते हैं। अभिप्राय यह कि शब्द सम्बन्ध ही तो लक्षणा है। वह कहीं तो साक्षात् है, कहीं गौण है।

व्यञ्जना भी शक्ति और लक्षणाके अन्तर्गत ही है। कहीं वह शब्दकी शक्तिसे। कहीं अर्थकी शक्तिसे, कहीं अनुमान आदिसे सिद्ध होती है। जिस वाक्यका तात्पर्य यथाश्रुत अर्थसे नहीं घटता उस स्थानमें लक्षणा मानी जाती है, उसकी प्रतीतिकी इच्छासे कहा जाना, और तात्पर्यका ज्ञान होना वाक्यके अर्थको जाननेमें कारण होताहै। जैसे किसीने कहा सैन्धवको लाओ यदि कहीं जानेका समय हो तो वहां सैन्धव (सिन्धुदेश का) घोडा लिया जायगा। भोजनका समय हो तो सिन्धु देशमें उत्पन्न हुआ लवण लिया जायगा। क्योंकि अनेकार्थक शब्दकी शक्ति वैसीही होती है, वहां प्रकरण इत्यादि तात्पर्यको स्पष्ट कर देते हैं।

दरवाजेको—इतना ही कहनेसे 'बन्द करो' इस पदका अध्याहार होजाता है,कदाचित् यह कहाजाय कि शब्दसे ही अर्थका ज्ञान होताहै, जबतक दूसरा शब्द न बोला जाय'दरवाजेको'इसके पीछे बोलनेवालेकी क्या इच्छा है, खोलो ऐसी भी इच्छा हो सकती है, इस दशामें 'बन्द करो' इसी पदके अध्याहारका क्या नियम है। इसमें निस्सन्देह कह सकतेहैं कि अर्थानुसन्धान तो अवश्य ही रहता है पर अध्याहार पदका ही लाघवसे कियाजाता है।पङ्कज (कमल) इस प्रकारके शब्दोंमें योगरूढि मानी जाती है अर्थात्—पद चार प्रकारके होतेहैं-यौगिक,रूढ,योगरूढ, और यौगिकरूढ। धातु प्रत्ययके मेलसे जो पद बनते हैं वह यौगिक पद हैं, जैसे—पाचक (रसोइया) इत्यादि, इसमें पच धातु; ण्वुल् प्रत्ययके योगसे पकानेवाला, ऐसा अर्थ हुआ। रूढि समुदाय शक्तिका नाम है केवल उसीसे

अर्थको कहनेवाला रूढ पद होताहै, जैसा—गौ (गाय) व्याकरणके हिसाबसे जो चलताहै उसको 'गौः' कह सक्तेहैं पर इस पदकी शक्ति केवल गायमें है । योग और रूढि दोनोंसे परस्पर अर्थको कहनेवाला पद योगरूढ कहा जाताहै, जैसे—पङ्कज (कमल)। यद्यपि चन्द्रकमल (कुही)भी जल और पङ्कसे उत्पन्न होताहै पर योगरूढिसे सूर्यके प्रकाशसे फूलनेवाले कमलका ही बोध होताहै । चतुर्थ—यौगिकरूढ अर्थात् धातु प्रत्यय आदिके मेलसे और प्रसिद्धिसे अर्थका कहनेवाला पद होताहै, जैसा उद्भिद् पद । इससे पृथ्वीको भेदकर अङ्कुररूपसे निकलने वाले वृक्ष लतादिका बोध होताहै । योगरूढ और यौगिकरूढ इन दो शब्दोंमें इतना भेद है कि, योगरूढसे पङ्कज होने परभी चन्द्रकमलका बोध नहीं होता, यौगिकरूढमें पृथ्वी को विदारण करके निकलनेवाले सबका बोध होताहै ।

मीमांसकोंका मत है कि, जिस पदमें जिसका अन्वय हो उसीमें शक्ति होती है, गाय, घोडा, मनुष्य, इनमें परस्पर

अन्वय न होनेसे शक्ति नहीं मानी जाती । गौतम ऋषिके अनुयायी (नैयायिक) कहते हैं कि पद और उसके अ-र्थके सम्बन्धका वाक्यके अर्थसे ही भान होताहै फिर उ-सके सम्बन्धमें भी शक्ति मानना गौरव है ।

आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः । पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तानन्वया-ननुभावकत्वमाकाङ्क्षा।अर्थाबाधो योग्यता। पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः । तथा चा-काङ्क्षारहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा-गौरश्वः पुरुषो हस्ती-इति न प्रमाणम्,आकाङ्क्षावि-रहात् । अग्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणम्,योग्य-ताविरहात्,प्रहरे प्रहरे असहोच्चारितानि (गा-म्-आनय) इत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सा-न्निध्याभावात् ।

आकाङ्क्षा,योग्यता और सन्निधि वाक्यके अर्थके जाननेमें कारण हैं,एक पदका दूसरे पदके साथ जो सम्बन्ध है उससे अन्वय ठीक होजाय उसको आकाङ्क्षा कहते हैं। अर्थ करनेमें किसी प्रकारका विरोध न हो उसे योग्यता कहतेहैं । शब्दोंको विलम्बसे उच्चारण न करना सन्निधि क- ...जातीहै।इससे स्पष्ट हुआ कि आकाङ्क्षा और योग्यता विना वाक्य अप्रामाणिकहै । इतना और जानना चाहिये कि, आकाङ्क्षा इत्यादिका ज्ञान होना चाहिये, नहीं तो किसीको भ्रम होजाय कि आकाङ्क्षा इत्यादि नहीं हैं तो शब्दका भ्रम भी नहीं होगा । गाय, घोड़ा,मनुष्य, हाथी यह कहना प्रमाण नहीं है, क्योंकि इनमें आकाङ्क्षा नहीं है'वह आगसे सींचे' यह कहना भी अठीक नहीं है, क्यों कि आगसे सींचनेकी योग्यता नहीं है । एक एक पहरमें साथ न कहे हुए 'गायको लेआओ'इत्यादि शब्द प्रमाण नहीं होते क्योंकि समीपमें कहना उनमें नहीं है ।

वाक्यं द्विविधम्—वैदिकं, लौकिकं च, वैदिक-मीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम्। वाक्यार्थ-ज्ञानं शब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः।

॥ इति शब्दप्रमाणम् ॥

वाक्य दो प्रकारका होताहै—वैदिक और लौकिक। वेदके वाक्य ईश्वरकी उक्ति होनेसे सभी प्रमाण हैं।'वेदः पौरुषेयः, वाक्यसमूहत्वात, भारतादिवत्' वेद परमेश्वरका कहा हुआ है,वाक्योंके समूह होनेसे, महाभारतके समान; इस अनुमानसे वेदका ईश्वरोक्त होना सिद्ध हुआ।लौकिक वाक्य यथार्थवक्ताका तो प्रामाणिक है,उससे-विरुद्ध अप्रमाण,शब्दके ज्ञान होनेसे वाक्यके अर्थका ज्ञान होताहै इसका साधक शब्द है।

॥ इति शब्दप्रमाण ॥

वैशेषिकमतवाले कहतेहैं कि,शब्द प्रमाण नहीं होसकता उनके खण्डनके लिये कुछ लिखाजाताहै-'घडा ले आओ' यह पद अर्थके सम्बन्धका ज्ञान करातेहैं क्योंकि यह आकाङ्क्षा, सान्निधि इत्यादियुक्त पदोंके समूह हैं,गायको लकडी हाथमें लेकर लेआओ इस मेरे कहे हुए वाक्यके समान इस अनुमानसे ही सम्बन्धके ज्ञानके सम्भव होनेसे शब्द कोई दूसरा प्रमाण नहीं है ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, अनुमानकी अपेक्षा शब्दज्ञान भिन्न होताहै, शब्दसे जानताहूं यह जो भासित होताहै इसमें किसीका विरोध नहीं । इससे वैशेषिक लोगोंको भी शब्दको प्रमाण मानना चाहिये ।

यह देवदत्त बड़ा पुष्ट है, दिनमें कभी नहीं खाता, इस वाक्यमें मीमांसक लोग अर्थापत्ति नामक भिन्न ही प्रमाण मानतेहैं । इसका खण्डन नैयायिक लोग करते हैं कि—विना खानेसे कोई पुष्ट नहीं होसकता,देवदत्त दिनमें

नहीं खाता परन्तु मोटा ताजा तो है इससे अवश्य यह रातमें खाता है इस अर्थापत्तिकी कोई आवश्यकता नहीं है'देवदत्त रातमें खाताहै, दिनमें न खाने परभी यह मोटा ताजा है'। इस अनुमानसे ही रातका भोजन सिद्ध होजाता है सौ संख्यामें पचास संख्याका सम्भव भी अनुमान ही है अर्थात् पौराणिक लोग सम्भव और ऐतिह्य (अफवाह)को अलग प्रमाण मानतेहैं यह दोनों अनुमानके अन्तर्गत हैं आँख मुख और हाथ इत्यादिकी चेष्टा (इशारों) से भी जो अर्थका ज्ञान होताहै वह शब्द और अनुमानके अन्तर्गत ही है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान और शब्द यह चार ही प्रमाण हैं।

॥ इति शब्दपरिच्छेदार्थ समाप्त ॥

"ज्ञानानां तद्वति तत्प्रकारकत्वं स्वतो ग्राह्यं परतो वेति विचार्यते।तत्र विप्रतिपत्तिः। ज्ञान

प्रामाण्यं तदप्रामाण्याग्राहकयावज्ज्ञानग्राहक-सामग्रीग्राह्यम्, न वा । अत्र विधिकोटिः स्वतस्त्वम्, निषेधकोटिः परतस्त्वम्।अनुमानग्राह्यत्वेन सिद्धसाधनवारणाय--यावदिति । 'इदं ज्ञानमप्रमा'इति ज्ञानेन प्रामाण्याग्रहाद्बाधवारणाय--अप्रामाण्याग्राहकेति। 'इदं ज्ञानमप्रमा' इतिअनुव्यवसायनिष्ठप्रामाण्यग्राहकस्याप्रामाण्याग्राहकत्वाभावात्स्वतस्त्वं न स्यादित्यतः-तदिति। तस्मिन्प्रामाण्याश्रये अप्रामाण्याग्राहक इत्यर्थः । उदाहृतस्थले व्यवसाये अप्रामाण्याग्राहकस्याप्यनुव्यवसाये तदग्राहकत्वात्स्वतस्त्वासिद्धिः । अस्य प्रामाण्यवादस्यावशिष्टांशो मृदुबालमनस्सु नातिभारं कुर्यादिति विरम्यते । इति दी० "

"किसी चीजवाली कोई चीज है इस ज्ञानमें 'किसी चीज वाली' इस अंशका ज्ञान अपने आप होताहै, या किसी अनुमान इत्यादिसे ? इसका विचार यहां करतेहैं। पहले यहां यह शङ्का है कि ज्ञानमें प्रमाण उस ज्ञानके अप्रमाण नहीं जनानेवाले सम्पूर्ण ज्ञानकी ग्राहकसामग्रीसे लिया जाता है या नहीं ?। यहां विधिकोटिमें 'स्वतः' और निषेधकोटिमें 'दूसरेसे' यह पद है। प्रामाण्य अनुमान-ग्राह्य है, इस लिये सिद्धका ही साधन हुआ, इस दोषकी निवृत्तिके लिये शङ्कावाक्यमें 'सम्पूर्ण ज्ञानकी सामग्री०' कहा है। यह ज्ञान अयथार्थ है ऐसा समझनेसे प्रामाण्य-का ग्रहण नहीं हुआ इससे ज्ञानमें बाध होगा इस लिये मूलमें अप्रामाण्यग्राहक ऐसा कहा है। यह ज्ञान अप्रमा है इस अनुव्यवसायमें रहनेवाले प्रामाण्यग्राहकको अप्रामा-ण्यके ग्राहक न होनेसे अर्थात् अप्रामाण्य ग्राहक होनेसे स्वतःपना न होगा इससे 'तत्' पद कहा है। तत्पदक

अर्थ यहाँ 'उस (प्रमाणताके आश्रय) में' यह है। 'यह ज्ञान अप्रमा है' व्यवसायमें अप्रामाण्यका ग्राहक न होके भी अनुव्यवसायमें अप्रामाण्यका ग्राहक न होनेसे स्वतः पदकी सिद्धि होती है। इस प्रामाण्यवादका विषय कठिन है बालकोंके मनमें इससे भार न पडजाय इस हेतु इतना ही लिखकर विस्तार छोड दिया जाता है।

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः—संशयविपर्ययतर्कभेदात्। एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्ध—नानाधर्मवैशिष्ट्यज्ञानं संशयः। यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति। मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्ताविदं रजतमिति। व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोपि न स्यादिति।

अयथार्थ अनुभव तीन प्रकारका होताहै—संशय विपर्यय और तर्क इन भेदोंसे। यद्यपि स्वप्न इन तीनों

अनभवोंसे भिन्न प्रतीत होता है । पर वह मनका विकार होनेसे तीनोंके अन्तर्गत है । एक पदार्थ में विरुद्ध अनेक धर्मोंवाला ज्ञान संशय कहाताहै । जैसे–यह ठूंठ है अथवा मनष्य । झूठा ज्ञान विपर्यय कहाहै, जैसे–सीपमें यह चाँदी है ऐसा ज्ञान । व्याप्य (कम देशमें रहनेवाले) धूम इत्यादिके आरोपसे व्यापक (अधिक देशमें रहनेवाले) अग्नि इत्यादिका स्थापन करना तर्क कहाता है । जैसे यदि आग न हो तो धुँआं भी न हो ।

॥ इति अनभवनिरूपण ॥

स्मृतिरपि द्विधा–यथार्थाऽयथार्था चेति । प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्या अयथार्था ।

स्मरण करना भी दो प्रकारका है–ठीक ठीक प्रमाण ज्ञानसे होनेवाली स्मृति यथार्थ और अप्रमाणसे होनेवाली अयथार्थ है ।

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् । प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् । इच्छा कामः । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः । विहितकर्मजन्यो धर्मः । निषिद्धकर्मजन्योऽधर्मः । बुद्ध्यादयोऽष्टौ आत्ममात्रविशेषगुणाः । बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च । ईश्वरस्य नित्याः । जीवस्याऽनित्याः ।

सबोंको जो अच्छा लगे वह सुख कहाताहै । बुरा लगै वह दुःख है । किसी पदार्थकी इच्छा करना काम कहाताहै । कोप करना द्वेष है । कृति प्रयत्नको कहते हैं । वेद पुराण धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थोंमें मनुष्यके लिये जो करनेयोग्य कर्म लिखेहुए हैं उनके करनेसे धर्म होताहै और न करनेयोग्य कर्मोंसे अधर्म होताहै । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, यह केवल आत्मामें रहनेवाले विशेष गुण हैं । बुद्धि, इच्छा और

प्रयत्न नित्य तथा अनित्य होतेहैं । ईश्वरके नित्य और जीवके अनित्य हैं ।

संस्कारस्त्रिविधः—वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति । वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोमात्रवृत्तिः ।

संस्कार तीन प्रकारका है—वेग । भावना और स्थितिस्थापक । वेग—पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन्हीं पांचोंमें रहता है ।

अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना । आत्ममात्रवृत्तिः ।

अनुभवसे होनेवाली स्मरणका कारण भावना है । वह केवल आत्मामें रहती है ।

अन्यथा कृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः । कटादिपृथिवीवृत्तिः ।

दूसरे प्रकारसे किये हुए पदार्थका फिर उसी अवस्थाको करनेवाला स्थितिस्थापक कहाताहै। चटाई आदि पृथिवीमें रहताहै।

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिकद्रवत्व, वेग, स्थितिस्थापक, इतने सामान्य गुण हैं और रूप,रस आदि विशेष गुण हैं।

चलनात्मकं कर्म। ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् १ ॥ अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् २ ॥ शरीरसन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् ३ ॥ शरीरविप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् ४ ॥ अन्यत्सर्वं गमनम् ॥ ५ ॥

चलना फिरना इत्यादि कर्म कहाताहै। ऊपरके स्थानके संयोगका कारण उत्क्षे०(ऊपरको फैंकना) कहा जाता है १ ॥ नीचेके स्थानके संयोगका कारण अप०(नीचे डालना) है २ ॥ देहके समीपमें संयोग होनेका कारण आकु० (समेटना) कहा जाता है ३ ॥ शरीरके दूर

संयोग होनेका कारण प्रसा० (फैलाना) कहाता है ॥ ४ ॥ इससे भिन्न सब चलनेमें अन्तर्गत हैं ॥ ५ ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्। द्रव्यगुण-कर्मवृत्ति। परं सत्ता। अपरं द्रव्यत्वादि।

नित्य एक बहुतोंमें (समवाय सम्बन्धसे) रहनेवाला सामान्य होताहै। द्रव्य, गुण और कर्ममें रहताहै। सत्ता पर होतीहै। द्रव्यत्व, गुणत्व इत्यादि अपर है। यदि इस सामान्यके लक्षणमें नित्य पद न कहके केवल 'एकमनेकानुगतम्, इतनाही कहाजाताتो संयोगमें अतिव्याप्ति होती अर्थात् यह सामान्यका लक्षण संयोगमें भी चला जाता, नित्य कहनेसे संयोग तो नित्य नहीं होता इससे लक्षण ठीक हुआ। एक पद इसलिये है कि, जलपरमाणुमें जो सुफेद रूप है उसमें अतिव्याप्ति न हो। परमाणुके अति-सूक्ष्म परिमाण आदिमें अतिव्याप्ति न हो इससे अनेक पद कहागयाहै।

॥ इति सामान्यनिरूपण ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्त्तका विशेषाः ।

आकाश,काल, दिशा, आदि नित्य द्रव्योंमें रहनेवाले, और उन नित्यद्रव्योंको आपसमें अलग अलग करनेवाले विशेष होतेहैं । यहां यह विचार किया जाताहै कि, विशेष पदार्थके होनेमें क्या प्रमाण है ? कदाचित् यह कहा जाय कि, अत्यन्त मिले हुए परमाणुओंके परस्पर भिन्न करनेवाले धर्मके विना यह जलपरमाणु है, यह पृथ्वीपरमाणु है,ऐसा भेद न होगा इसलिये विशेष पदार्थ मानना चाहिये।यह नहीं कह सकते, इस परमाणुमें उस परमाणुके भेद सिद्धकरनेमें एकत्व आदि तो साधक नहीं हो सकते । हां,जल परमाणुका एकत्व तेजपरमाणुके एकत्वके भिन्न करनेमें साधक होगा, ऐसा कह सकतेहैं । जबतक उन परमाणुओंमें भिन्नता सिद्ध नहीं होती तबतक एक दो इत्यादि संख्यामें यह जल परमाणु है, यह तेजपरमाणु है यह जानना कठिन है । इससे प्रत्येक नित्य द्रव्यमें एक

विशेष पदार्थ मानना चाहिये । वही अपनी जातिके परमाणुओंका बतलानेवाला होगा । उसके अतिरिक्त और किसी विशेषको माननेकी आवश्यकता नहीं, इससे कोई अनवस्था नहीं, ऐसा नैयायिकोंका सम्प्रदाय है ।

॥ इति विशेषनिरूपण ॥

नित्यसम्बन्धः समवायः । अयुतसिद्ध-वृत्तिः । ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते,तावयुतसिद्धौ । अवयवावयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्ये चेति ।

नित्य सम्बन्धको समवाय कहतेहैं । वह अयुतसिद्ध पदार्थोंमें रहता है । जिन दोनोंके बीचमें एक चीज अपने स्वरूपसे ही दूसरेके आधारपर रहतीहै वह अयुतसिद्ध कहातेहैं । उदाहरण—हाथ, पैर आदि अवयव और शरीर, काला, लाल आदि गुण और वह गुण जिसमें रहतेहों ऐसा घड़ा वस्त्र आदि । क्रिया, और

क्रिया जिसमें होतीहो, जाति और व्यक्ति (मुख्य पदार्थ) विशेष और नित्य द्रव्य । समवायकी सिद्धि इस प्रकारसे होतीहै कि, 'काला घड़ा है' इस उदाहरणमें काला ऐसी विशिष्टबुद्धि; विशेषण और विशेष्यसम्बन्ध वाली है क्योंकि अनेक रंगोंमेंसे काले इस विशेष रंगका सम्बन्ध रखतीहै, लाठी लिया हुआ मनुष्य इस उदाहरणके समान । इस अनुमानसे समवायकी सिद्धि होगयी ! संयोगमें अतिव्याप्ति न हो इससे लक्षणमें नित्य पद कहा है । आकाश, काल, दिशा इत्यादिमें अतिव्याप्ति न हो इससे सम्बन्ध ऐसा लक्षणमें कहा है; क्योंकि आकाश आदि किसी सम्बन्धसे नहीं रहते ।

॥ इति समवायनिरूपण ॥

अनादिः सान्तः प्रागभावः उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य । सादिरनन्तः प्रध्वंसः उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य । त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिता-

कोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्ति इति।तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको-ऽन्योन्याभावः । यथा घटः पटो नास्तीति ।

आदि जिसका न हो और अन्त हो उसको प्रागभाव कहतेहैं, यह किसी कार्यकी उत्पत्तिके पहिले होताहै । जैसे—अभी कुम्हारने एक घड़ा बनाया इससे पहिले इस घड़ेका अभाव था (घड़ा नहीं था) । 'अनादिः प्रागभावः' इतना ही लक्षण करते तो आकाश इत्यादि पदार्थ भी अनादि हैं उनमें अतिव्याप्ति होती,इससे सान्तः पदभी कहा । आकाश इत्यादिका अन्त नहीं होता । 'सान्त प्रागभावः' इतना ही कहते तो घडा, वस्त्र इत्यादिमें अतिव्याप्ति होती इससे अनादि कहा । आदि तो हो पर अन्त जिसका न हो उसको प्रध्वंसाभाव कहते हैं, जैसे—घड़ा इत्यादिके उत्पन्न होनेके पीछे उस घड़े इत्यादिका अभाव। घड़े इत्यादिमें अतिव्याप्ति न हो इससे अनन्त ऐसा कहा क्योंकि घड़ेका तो अन्त होताहै । आकाश इत्यादि नित्य

पदार्थोंमें अतिव्याप्ति न हो इसलिये आदि पद कहा, वह अनादि है इससे लक्षण ठीक होगया। भूत वर्तमान और भविष्यत् इन तीनों कालोंमें जो रहता है उसको अत्यन्ताभाव कहतेहैं। अन्योन्याभावमें अतिव्याप्ति न हो इससे लक्षणमें संसर्गावच्छिन्न यह पद कहाहै, ध्वंस और प्रागभावमें अतिव्याप्ति न हो इसलिये त्रैकालिक पद लक्षणमें कहा गया है, पृथ्वीपर घड़ा नहीं है यह अत्यन्ताभाव का उदाहरण है। दो पदार्थोंमें किसी एक पदार्थका दूसरेमें जो अभाव है उसको अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे घड़ा वस्त्र नहीं है और वस्त्र घड़ा नहीं है। इन तीनों अभावोंसे भिन्न चौथा उत्पन्न होने और नष्ट होनेवाला अभाव भी होता है एसा कोइ नैयायिक कहतेहैं, जैसे—किसी स्थानमें घड़ा रक्खा था उसे वहांसे हटा दिया और पीछे वहां ले आये अब घड़ेका विद्यमान समय बीचके अभावको नहीं कह सकता, और अत्यन्ताभाव तो नित्य है, जिस समय घड़ा विद्यमान है उस समय घड़ेकी अत्य-

न्ताभावबुद्धि नहीं होसकती, यहां ध्वंस और प्रागभावके स्थानमें अत्यन्ताभाव नहीं होसकता यह पुराने नैयायिकों का मत है क्योंकि काले घडेमें लाल रंग नहीं है, लालमें काला रंग नहीं है; यह बुद्धि प्रागभाव और प्रध्वंसाभावको कहतीहै, अत्यन्ताभावको नहीं ।

नवीनोंका मत है कि, उक्त ध्वंस और प्रागभावके परस्पर विरोधमें कोई प्रमाण नहीं है इससे ध्वंस और प्रागभावके अधिकरणमें अत्यन्ताभाव भी रहताहै ।

मीमांसक प्रभाकरका मत है कि अभावको नहीं मानना चाहिये, जिस स्थानमें घड़ा नहीं है ऐसा ज्ञान होताहै वहां घडेके अभावकी कल्पनाहीसे काम चलसकताहै क्योंकि जिस स्थानमें घडेका अभाव मानना है, वह स्थान सिद्ध है ही, उसमें घड़ा नहीं है ऐसे ज्ञानसे ही लाघव है, और अभावको अलग पदार्थ न मानेंगे तो आधाररूप जो भूतल है वह शुद्ध कभी नहीं मिलेगा किसी न किसी अभावसे युक्त वह सदा रहेगा । और भी अनेक दोष हैं—

अभाव यदि आधारस्वरूप होगा तो जल इत्यादिमें जो गन्ध आदिका अभाव है वह जलादिरूप ही होगा वह आँखसे जाननेयोग्य होजायगा इत्यादि अनेक दोष आवेंगे।

अभावका अभाव भाव ही होताहै दूसरा पदार्थ नहीं होता ऐसा प्राचीन नैयायिक कहते हैं। जैसे–पानीका अभाव अग्नि, उस अग्निका अभाव वही पानी ही होगा। परन्तु नवीन नैयायिक कहतेहैं कि, अभावका अभाव अलग ही होताहै भाव नहीं होता, हां, उसका भी अभाव अर्थात् तीसरा अभाव पहिला अभाव होजावेगा इसमें कोई अनवस्था नहीं ऐसा मानतेहैं।

सर्वेषामेव पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात् सप्तैव पदार्था इति सिद्धम्।

न्यायशास्त्रमें प्रमाण–प्रमेय–संशय–प्रयोजन–दृष्टान्त–सिद्धान्त–अवयव–तर्क–निर्णय–वाद–जल्प–वितण्डा–हेत्वाभास–छल–जाति–निग्रहस्थान, इतने (१६)

पदार्थ हैं पर इन सबोंका उक्त सात पदार्थोंमें ही ठीक ठीक अन्तर्भाव होजाताहै इससे सात ही पदार्थ हैं यह सिद्ध हुआ ।

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नम्भट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

वैशेषिक और न्यायशास्त्र जाननेकी इच्छा करनेवाले बालकोंके ज्ञान होनेके लिये विद्वान् श्रीअन्नम्भट्टने यह तर्कसंग्रह बनाया है ।

इति कूर्माचलीयहरिदत्तशर्मनिर्मिता तर्कसंग्रहहिन्दीभाषाटीका समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-बंबई.